विभीषण

(रूप घनाक्षरी)

प्रथम खण्ड काव्य

डा० गणेशदत्त सारस्वत

कानपुर-१

समर्पण

हिन्दी साहित्य के दधीचि
युग पुरुषों के निर्माता
स्वयं में जो हिन्दी जगत के इतिहास हैं
ऐसे साहित्य महारथी
परमादरणीय **पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी**
के
कर कमलों
में
सादर समर्पित
कृति ।

• बद्रीनारायण तिवारी
संयोजक, मानस-संगम

कानपुर
रविवार, २५ दिसम्बर १९८३

सम्मति

रामकथा भारत के शाश्वत् जीवन मूल्यों की कथा है। उसकी व्यापकता तथा मर्मस्पर्शिता के कारण उसे भारत में ही नहीं वृहत्तर भारत में भी अद्भुत प्रसार प्राप्त हो सका है। उन मूल्यों के अनुकूल और प्रतिकूल आचरण करने वाले दोनों प्रकार के पात्र उपयोगी हैं, क्योंकि सौन्दर्य बोध के लिए विरूपता और आलोक के मूल्यांकन के लिए अन्धकार आवश्यक रहता ही है।

इसी से सभी पात्रों को काव्यों में स्थान मिल गया है। परन्तु इस पात्र समष्टि में विभीषण ही विवादास्पद पात्र रहे हैं, क्योंकि कुछ ने उन्हें देशद्रोही और बन्धुघाती माना तथा कुछ ने राम के प्रति समर्पित भक्त।

दोनों ही धारणाओं के लिए पर्याप्त प्रमाण मिल जाते हैं। वैसे सभी कवियों का लक्ष्य पात्रों को ऐसे आलोक में उपस्थित करने का रहता है, जिसमें उनकी मूलभूत विशेषतायें उज्जवल हो उठें। कैकेयी, मन्थरा, मेघनाद, रावण आदि पात्र काव्यों के नायक होकर नया रूप पा सके हैं।

प्रस्तुत विभीषण खण्ड काव्य की पाण्डुलिपि श्री रामगोपाल संड मेरे अवलोकनार्थ लाये विभीषण के चरित्रचित्रण के प्रति मेरी उत्सुकता स्वाभाविक है।

डा० गणेशदत्त सारस्वत विद्वान भी हैं और कवि भी। वे अनेक पुस्तकों के रचयिता तथा हिन्दी जगत के परिचित व्यक्ति हैं। काव्य के

मंगलाचरण से ही उनकी विद्वता प्रकट होने लगती है और फिर स्थान स्थान पर पाठक को उसका परिचय मिलने लगता है। खण्ड काव्य के अनेक स्थल मर्म को स्पर्श करते हैं। विभीषण रावण का संवाद, सुरसा से विदा, राम से भेंट आदि ऐसे ही मार्मिक स्थल हैं, जिनमें कवि की भावुकता को विस्तार और गहराई के लिए पर्याप्त अवकाश मिला है।

मेरा विश्वास है सुधी पाठकों को इस खण्ड काव्य का चरित्र नायक 'विभीषण' सन्तोष दे सकेगी।

डा० महादेवी वर्मा
एम०ए०, साहित्य वाचस्पति
उपकुलपति
प्रयाग महिला विद्यापीठ

१७ सी, अशोक नगर,
इलाहाबाद

भूमिका

विभीषण राम-कथा के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र हैं। रामोपासना में भी उनका प्रमुख स्थान है। षडक्षर राम-मंत्र के अनुष्ठान में तृतीयावरण-पूजन में हनुमान सुग्रीव और भरत के पश्चात् तथा लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न और जाम्बवान के पूर्व विभीषण की पूजा की जाती है। वे राम भक्ति के अन्यतम आचार्यों में गिने जाते हैं। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में भी उनके उदात्त चरित्र का विशद निरूपण किया गया है। आदि कवि ने लिखा है, विभीषण तो सदा से ही धर्मात्मा थे। वे नित्य धर्मपरायण रह कर शुद्ध आचार-विचार का पालन करते हुए पाँच हजार वर्षों तक एक पैर से खड़े रहे। उनका नियम समाप्त होने पर अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देवताओं ने उन पर फूल बरसाये। तदनन्तर विभीषण ने अपनी दोनों बाहें उठाकर पाँच हजार वर्षों तक सूर्य की आराधना की। इस प्रकार मन को वश में रखने वाले विभीषण ने दस हजार वर्ष सुख से बिता दिये, मानों वे स्वर्ग के नन्दनवन में निवास कर रहे हों। इस तपस्या से प्रसन्न होकर लोक पितामह ब्रह्मा विभीषण के पास आये और कहा — "वत्स ! तुम्हारी बुद्धि सदैव धर्म में लगी रहने वाली है। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अपनी रुचि के अनुसार मुझसे कोई वर माँगो।" यह सुनकर किरणमाला मण्डित चन्द्रमा की भाँति शोभन व्यक्तित्व वाले, सदा समस्त गुणों से सम्पन्न धर्मात्मा विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा — "भगवन ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझको वर देना ही चाहते हैं, तो सुनिये पितामह ! बड़ी से बड़ी आपत्ति में पड़ने पर भी मेरी बुद्धि धर्म में ही लगी रहे। कभी उससे विचलित न हो और बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो जाए।

मेरे विचार और कर्म सब धर्म सम्मत हों। मेरे लिए इससे उत्तम और अभीष्ट कोई वरदान नहीं है। कारण जो धर्म में अनुरक्त है, उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं —

> परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ।
> अशिक्षितं च ब्रह्मास्त्रं भगवन प्रतिभातु मे ।।
> या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रयेषु च ।
> सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तं धर्मं च पालये ।।
> एष मे परमोदारो वरः परमको मतः ।
> नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम् ।।

यह सुनकर प्रजापति ब्रह्मा और अधिक प्रसन्न हुए और कहा — "जो कुछ तुम चाहते हो, वह सब पूर्ण होगा। राक्षस योनि में जन्म लेकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्म में नहीं लगती है, इसलिए मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूं।"

विभीषण का यह महान् चरित्र अनेकानेक काव्यों में अभ्यर्थित हुआ है। उसका विभीषण नाम भी उसके सौम्य चरित्र का सूचक है। 'विभीषण' नाम में "वि" उपसर्ग का प्रयोग विगत के अर्थ में किया गया है, जिसका अर्थ है भीषणता से मुक्त। राक्षस कुल में उत्पन्न होकर भी जो भीषणता और भयावहता से मुक्त है, वह है विभीषण। हमारे देश के इतिहास में एक ऐसा काल खण्ड आया, जब सब कुछ संकीर्ण राष्ट्रीयता की दृष्टि से देखा जाने लगा। यह संकीर्ण दृष्टि विभीषण के उदार चरित्र को समझने में बाधक हुई। अतएव विभीषण को देशद्रोही आदि कहा जाने लगा। महामनीषी डा० सम्पूर्णानन्द जी ने तो विभीषण को नराधम तक कह डाला। विभीषण के चरित्र की महत्ता और भक्ति के स्वरुप की सम्यक अवगति के अभाव में ऐसे सारहीन प्रवाद चल पड़े। प्रसन्नता की बात है प्रतिभाशाली कवि डा० गणेशदत्त

सारस्वत ने विभीषण के सच्चरित्र को चित्रित करने के लिए 'विभीषण'

नाम के इस सरस और सशक्त खण्डकाव्य का प्रणयन किया है।

यह खण्डकाव्य पांच अंकों में पूर्ण हुआ है। हमारे देश की परम्परा के अनुसार इस काव्य का आरम्भ मंगलाचरण से किया गया है। मंगलाचरण में वस्तुनिर्देशात्मक तत्त्व भी हैं और इसकी उदात्त भाषा शैली ग्रन्थ के पारायण के निमित्त उपयुक्त भावभूमि के निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। प्रथम सर्ग में लंका के ऐश्वर्य का बड़ा प्रभावशाली वर्णन किया गया है। कवि ने रावण की बीस भुजाओं की आधुनिक बोध सम्मत व्याख्या की है और उसके दस मुखों को चार वेद और षड्शास्त्र के अनुरूप माना है। रावण की इस स्वर्णपुरी में विभीषण को राम-चरणारविन्द के चंचरीक के रुप में चित्रित किया गया है। वह नवधाभक्ति का अभ्यासी और षडक्षर मंत्र का जापक है। उसके मन में रावण के अत्याचारों और पापाचरणों के प्रति गहरी विरक्ति है। यह विरक्ति ही अन्ततः उसके प्रति विद्रोह का रुप धारण कर लेती है। कवि ने रावण के प्रताप और ऐश्वर्य का भी बड़ी सहृदयता के साथ वर्णन किया है। कथावस्तु अनेक मार्मिक वाह्य संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व की परिस्थितियों के बीच से गुजरती हुई श्रीराम के चरणों में विभीषण की प्रपत्ति के साथ समाप्त होती है।

कथावस्तु में विदग्ध कवि ने बड़ी कुशलता के साथ आधुनिकता के अनेक उपादानों का संयोजन किया है। इस प्रकार उसने अपनी कथावस्तु के विधान को अत्यन्त व्यंजक बनाने का प्रयत्न किया है और समसामयिक जीवन-दृष्टि से भी उसे अधिक से अधिक प्रासंगिक बनाने का उपक्रम किया है। विभीषण रावण से युद्ध से विरत होने का अनुरोध करता है। रावण इस युद्ध को दो जातियों—आर्य और अनार्य—का संघर्ष घोषित करता है। विभीषण बड़ी प्रामाणिकता के साथ रावण के इस

कूटनीतिक मिथ्या युक्ति-जाल का खण्डन करता है। विभीषण कहता है कि आर्य और अनार्य के भेद का आधार शील और सदाचार है, जन्म अथवा जातीयता नहीं। हमारे देश के परतन्त्रता के काल में अंग्रेजों के साम्राज्यवाद से प्रेरित पश्चिमी विद्वानों ने आर्य-अनार्य जैसे कल्पित भेदों का प्रचार किया और हमारे राष्ट्रीय-जीवन को विघटित करने का प्रयत्न किया। आज भी हमारी राष्ट्रीय चेतना इस विष के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाई है। राष्ट्रीय चेतना से सम्पन्न कवि सारस्वत जी ने अपने काव्य में इस प्रकार की राष्ट्र विरोधी प्रवृत्तियों के निरसन का सफल प्रयास किया है।

हमारे आज के शासक और नेतागण चाटुकारों से घिरे रहते हैं। इन चाटुकारों के कारण उनको देश और समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञानन हीं हो पाता। रावण की स्थिति भी ऐसी ही है। कवि ने लिखा है कि रावण के सभासद कान भरने की कला में सिद्ध हस्त हैं। इन सभासदों की चाटुकारिता और रावण की विवेक हीनता का बड़ा विदग्ध प्रमाण उस प्रसंग में प्रस्तुत किया गया है जब हनुमान जी लंका जला कर चले जाते हैं। रावण के सभासद और सेनानायक रावण से कहते हैं कि यदि हम लोगों को आज्ञा हुई होती तो हम उस कपि को मार गिराते। इस प्रसंग का सार्थक विवरण इस छन्द में प्रस्तुत किया गया है—

बोले यातुधान — "हम कायर नहीं हैं किन्तु,
प्राप्त था निदेश नहीं विवश हुए थे कर।
दूत है अबध्य राजनीति - प्रतिवद्धता से,
अंग-भंग होवे सर्वसम्मति हुई मुखर।
ऐसी ही परिस्थिति में बालधी जलानी पड़ी,
सहमति मौन का मिला था भवदीय स्वर।

न्याय - रक्षणार्थ आततायी है न मारा गया,
खून का पिया है घूँट [illegible] ।”

काव्य-शिल्प की दृष्टि से भी इस रचना में अपेक्षित प्रौढ़ता है। छन्दों का वड़ा सुन्दर और नपातुला विधान कवि ने किया है और उनकी उद्भावनाएँ भी कहीं-कहीं वड़ी अनूठी हैं। पदावली में प्राञ्जलता के साथ-साथ रसानुकूलता और भावनुकूलता पायी जाती है। पदबंध अधिकांश प्रगाढ़ और अशिथिल है। सम्पूर्ण काव्य रूप घनाक्षरी छन्द में लिखा गया है; केवल सर्ग के अन्त में सवैया छन्द का प्रयोग हुआ है घनाक्षरी हिन्दी भाषी जनता का अपना जातीय छन्द है। रुप घनाक्षरी में लय की उदात्तता का विशेष प्रकर्ष लक्षित किया जा सकता है। सिद्ध कवियों ने घनाक्षरी छन्द के संघटन के सौन्दर्य को पंक्ति-पंक्ति की प्रगाढ़ सन्निधि से संयोजित किया है और उसके द्वारा एक अंतरंग गहन संगीत की सृष्टि की है। शब्द और अर्थ की रमणीयता के साथ-साथ इस छन्द में तन्मयताकारी मृदुल अन्तरंग संगीत की सृष्टि घनाक्षरी काव्य की परम्परा की विशिष्ट उपलब्धि है। निराला जैसे युग-प्रवर्तक महा कवि ने स्वीकार किया है कि उन्होंने अपने मुक्त छन्द की सृष्टि इसी घनाक्षरी छन्द के आधार पर की है। घनाक्षरी छन्द की लयमयता में मृदंग की थाप और ध्रुपद संगीत का आनन्द मिलता है। इसीलिए यह छन्द आदिकाल से आज तक कवियों का कण्ठहार बना हुआ है। सारस्वत जी ने रुप घनाक्षरी छन्द का बड़ा सफल, सशक्त तथा सार्थक प्रयोग किया है। उनके अनेक छन्दों में पद संघटना का कौशल और तज्जनित संगीत का सम्मोहन मिलता है। उनके कई छन्दों में पदलालित्य, अर्थगाम्भीर्य और संगीतात्मकता का बड़ा अविकार पूर्ण समन्वय घटित हो सका है। मैं कविवर डॉ० गणेशदत्त सारस्वत को उनकी इस सफल कृति के प्रणयन के लिए बधाई देता हूं। विभीषण के चारित्र्य के पूर्णचन्द्र कल्पित कालिमा के प्रक्षालन का यह प्रयास अभिनन्दनीय है।

मैं आशा करता हूं कि सारस्वत जी की काव्यकला प्रौढ़ता के उत्कर्ष की साधना में रत रहकर उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कृतियों का सर्जन करती रहेगी।

डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह
एम०ए०, डी०लिट्०
प्राक्तन आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
तथा अधिष्ठाता कलासंकाय,
बड़ौदा, जोधपुर तथा मगध विश्वविद्यालय

त्रिवेणी नगर,
लखनऊ
हिन्दी-दिवस, १९८३

अभिमत

विभीषण खण्डकाव्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण रचना है। अनेक प्रचलित राम-काव्यों में विभीषण के चरित्र को इस प्रकार चित्रित किया गया कि जहाँ एक ओर वह भक्तिधारा की दृष्टि से आदर्श रामभक्त दिखाई देते हैं, वहां दूसरी ओर 'घर का भेदी' जैसी लोकोक्ति के जन्मदाता मालूम पड़ते हैं। लेकिन कई महत्वपूर्ण भारतीय और दक्षिण पूर्वी एशिया के रामकाव्यों में विभीषण के चरित्र को इस प्रकार नहीं चित्रित किया गया है। जन-साधारण में ऐसे विवादास्पद चरित्र लोकप्रिय हो जाते हैं। ऐसे विवादास्पद चरित्र को उसकी पारम्परिक पृष्ठभूमि के साथ नये संदर्भ में मानवीय सहानभूति से चित्रित करना कठिन कवि-कर्म है, जिसको डा० गणेशदत्त सारस्वत ने सफलतापूर्वक पूरा किया है। रामेश्वरम में समुद्र के पास विभीषण का एक मन्दिर है। सारस्वत जी ने काव्य के मन्दिर में विभीषण के चरित्र की प्रतिमा में नई प्राण-प्रतिष्ठा की है। इस काव्य को पढ़कर विभीषण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करनी पड़ेगी कि जिसमें भीषणता विगत यामी समाप्त हो गयी हो वह विभीषण है और यदि विभीषण राक्षस थे तो इस अर्थ में ही कि राक्षस वह होता है जो रक्षा करता है। इस काव्य में भी विभीषण का चरित्र युद्ध की विभीषिका से मानवता की रक्षा करने के प्रयत्न में ही रावण का विरोध करता है और यदि भक्त का अर्थ 'भज सेवामाम्' धातु से निकाला जाय तो भक्त का अर्थ होता है, सेवक या सेवा करने वाला। इस दृष्टि से भी इस काव्य में विभीषण का चरित्र मानवीय आदर्शों के सेवक के रूप में निखर कर सामने आता है।

शिल्प की दृष्टि से भी इसकी अपनी विशेषता है आज की काव्य भाषा में घनाक्षरी और सवैया छन्द का प्रयोग। यह स्वागत योग्य छन्द-काव्य है।

आकाशवाणी दिल्ली
३ जुलाई '८३

गोपालकृष्ण कौल
प्राक्तन हिन्दी प्रोड्यूसर

विचार विन्दु

राम और रावण का युद्ध तो कभी एक बार हुआ था, पर
हमारे अन्तस में यह युद्ध निरन्तर हुआ करता है। राम प्रतीक है सत्
का, और रावण प्रतीक है असत् का। सत् और असत् का द्वन्द
मानव-व्यापार से सम्बन्धित क्रियाओं का शाश्वत सत्य है। सत् प्रवृत्ति
देव रूप है और असत् प्रवृत्ति असुर रूप है। देवों की संख्या का न्यून
होना और असुरों की संख्या का आधिक्य होना स्वाभाविक है। देव
और असुर तो प्रवृत्तिगत होते हैं। अच्छी प्रवृत्तियों का निर्माण श्रम
साध्य है और बुरी प्रवृत्तियों की सृष्टि सहज हो हो जाया करती है।
कुप्रवृत्तियों का पाण्डित्य सहजोन्मेष रूप में होता है। इस प्रकार हमारे
अन्तस में निरन्तर चलने वाले देवासुर संग्राम की अनेकानेक रूपावलियाँ
ही बाह्य जगत के विभिन्न कार्यकलापों का विधान किया करती हैं।

जिस प्रकार सघन मेघमालाओं के बीच विद्युत कौंध जाती है
उसी प्रकार असत् वृत्तियों के बीच यदाकदा सत् वृत्तियाँ अपना प्रभाव
व्यक्त करती रहती हैं। जो व्यक्ति अपनी सत् वृत्तियों के प्रभाव से
असत् वृत्तियों को नष्ट करने में सक्षम होता है उसकी संज्ञा होती है
'पुरुष'। पुरुष वही है जिसने अपने पहले (पुरु) पापों को जला (उष)
डाला है। ब्रह्म की संज्ञा पुरुष है। उसे परम पुरुष भी कहते हैं। वह
पूर्णतः निस्पाप है, निष्कलुष है।

रामचरित मानस के सुन्दर काण्ड में विभीषण ने रावण को
जो उपदेश दिया है, वह प्रस्तुत संदर्भ में दृष्टव्य है :—

सुमति कुमति सब के उर रहहीं। नाथ ! पुरान-निगम अस कहहीं।
जहाँ सुमति, तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति, तहँ विपत निदाना ।।

तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित, मानहु रिपु प्रीता ।
कालराति निसिचर-कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीत घनेरी ।।

अध्यात्म रामायण में भी इसी प्रकार का कथन है :—

सीताभिधानेन महाग्रहेण ग्रस्तोऽस्मि राजन्न च ते विमोक्षः ।
तामेव सत्कृत्य महाधनेन दत्वाभिरामाय सुखी भव त्वम् ।।

बाल्मीकि रामायण में भी रावण के प्रति विभीषण की मंत्रणा इसी प्रकार की है :—

यदाप्रभृति वैदेही सम्प्राप्तेमां पुरीं तव ।
तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्यशुभानि नः ।।

दशम सर्ग, १४

(जब से सीता तुम्हारी इस पुरी में आई है, तबसे हम सबको नित्य ही अपशकुन दिखलाई पड़ते हैं ।)

किन्तु रावण ने युक्ति पूर्वक वचन कहने वाले विभीषण को तिरकार के साथ विदा कर दिया :—

"दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं ।
विसर्जयामास तदा विभीषणम् ।।"

दशम सर्ग, २९

उक्त उद्धरणों का तात्पर्य मात्र सत् एवं असत् वृत्तियों के प्रति इंगित करना है । रावण की आसुरी वृत्ति उसे ब्राह्मणत्व से च्युत कर देती है और असत् वृत्तियों के परिपालन से उसका समूल नाश होता है । किन्तु उसी आसुरी वृत्तियों के जाल में फँसी हुई विभीषण की सत् वृत्ति, देवोपम आचरण की पुण्य शक्ति उन्मुक्त होकर राम के प्रति

समर्पित होती है । पुरुष (विभीषण) का परम पुरुष (राम) से मिलन होता है :—

स्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु ! भंजन-भव-भीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन-सुखद रघुबीर ।।

× × ×

दीन बचन सुनि, प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि, हृदय लगावा ।।

—रामचरित मानस, सुन्दर काण्ड

सद् वृत्तियों के परिपालक सन्त विभीषण से राम कहते हैं :—

तुम सारिखे संत प्रिय मोरे । धरौं देह, नहिं आन निहोरे ।।

सगुन उपासक पर-हित-निरत, नीति-दृढ़-नेम ।
ते नर प्रान समान मम, जिन्हके द्विज-पद-प्रेम ।।

—रामचरित मानस, सुन्दर काण्ड

विभीषण अपनी सात्विकी वृत्ति के कारण ही राम के प्रिय हुए । किन्तु लौकिक प्रसंगों में जहाँ एक ओर उनके संत स्वरूप की प्रतिष्ठा है, वहीं दूसरी ओर घर का भेद देने के कारण उनकी यत्रतत्र निंदा भी है । लोक जीवन में विभीषण के प्रसंग से कहावत ही बन गई—"घर का भेदी लंका ढावै ।" कदाचित् कोई व्यक्ति इसीलिए अपने बालक का नाम विभीषण नहीं रखता, यद्यपि विभीषण अपनी आचारनिष्ठा में परम पूत, परम दिव्य एवं परम संत है । यह बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि डा० गणेश दत्त सारस्वत ने 'विभीषण' नामक खण्ड काव्य द्वारा एक परम तेजस्वी, नीति-कुशल, निर्भीक, विनयी एवं विवेक सम्पन्न भक्त के समर्पित जीवन-चरित्र को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है ।

रामचरित के विशाल स्वरूप का विभीषण प्रसंग एक खण्ड (अंश) मात्र है । उसका आलेखन खण्ड काव्य के रूप में पाँच सर्गों में

सम्पन्न हुआ है। प्रारम्भ में मंगलाचरण के ५ छंद हैं। इसके बाद प्रथम सर्ग में ३०, द्वितीय सर्ग में [illegible], तृतीय सर्ग में [illegible], चतुर्थ सर्ग में २९ और पंचम सर्ग में २९ हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण खण्ड काव्य ५ + १७८ = १८३ छंदों में ही समाहि है।

छंद-रूप की दृष्टि से प्रत्येक सर्ग में रूप घनाक्षरी काप्रयोग का प्रयोग किया गया है। इसके प्रत्येक चरण में ३२ वर्ण होते हैं और १६-१६ वर्णों पर यति होती है। अन्त के दो वर्ण क्रमशः दीर्घ ह्रस्व (ऽ।) होते हैं। प्रत्येक सर्गान्त में सवैया छन्द का प्रयोग किया गया है। छन्द विधान की दृष्टि से रचना में कसावट है। सामान्यतः कहीं भी शैथिल्य दृष्टिगत नहीं होता है। प्रत्येक छन्द सुविचारित रूप से माँजा गया है। कृति में लेखक का अभ्यास और परिश्रम स्पष्ट परिलक्षित होता है।

सम्पूर्ण रचना में भाषागत पाण्डित्य का भी दर्शन होता है जो यत्र-तत्र सहज भावोद्रेक को बोझिल भी बना देता है। कदाचित् इसी लिए लेखक को पाद टिप्पणी के रूप में क्लिस्ट शब्दों के अर्थ भी देने पड़े हैं जिससे पाठक अभीप्सित भाव को ग्रहण कर सके। उदाहरण देखिए :—

(१) दूसरे सर्ग के सातवें छन्द में हरिप्रिया' शब्द का प्रयोग तुलसी के अर्थ में हुआ है, यद्यपि हरिप्रिया का अर्थ लक्ष्मी, पृथ्वी और द्वादशी भी होता है।

(२) दूसरे सर्ग के २२वें छन्द में 'प्रमथ' का अर्थ याद टिप्पणी में शिवोद्यान दिया गया है। कोशगत 'प्रमथ' का अर्थ है—मंथन करने वाला, शिव के एक प्रकार के गण, घोड़ा, धृतराष्ट्र का एक पुत्र।

(३) पाँचवें सर्ग के दूसरे छन्द में 'शूक' का अर्थ पाद टिप्पणी में सर्प, कण्टकाकीर्ण दिया गया है। कोशगत अर्थ है जौ की बाल, पौधों के कड़े रोएँ, नोक, सुकोमलता, करुणा, काँटा।

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर ऐसे शब्दार्थ हैं जो पाठकों को लेखक के अपने निजी भाव को ही ग्रहण करने के लिए सहायता प्रदान करते हैं। ऐसे उद्धरणों से हमारा तात्पर्य मात्र इतना ही है कि सम्पूर्ण रचना लेखक के बौद्धिक धरातल की गरिमा को विशेष रूप से व्यक्त करती है जिससे पाठक की ग्राहिका शक्ति और रसास्वादन की क्षमता का परीक्षण वैसे ही होता है जैसे धारा के प्रवाह में पड़ने वाली भँवरों के बीच कुशल तैराक की कला का परीक्षण हो जाता है।

विभीषण की चारित्रिक सृष्टि इस रचना में अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ अवतरित हुई है। उनकी विचार शृंखला में उपनिषद ग्रंथों में विवेचित भाव सम्पदा के मनोरम रूप विन्यास की दिव्यता एवं सुष्ठुता उपलब्ध होती है। जैसे मधुमक्खी नाना पुष्पावलियों से रस-चयन करके उन्हें आत्मसात करने के उपरान्त उसे मधु रूप में प्रदान करती है उसी प्रकार विभीषण के चरित्रांकन में भी कवि ज्ञान-मधु का दान देता हुआ प्रतीत होता है :—

करता विचार—"कौन हूँ मैं, क्या प्रयोजन है,
आया किस लोक से हूँ, कुछ भी नहीं है ज्ञात ?
रहना यहाँ है किस रूप में न जानता हूँ,
सहने पड़ेंगे दुःख कितने त्रिताप-जात ?
कौन वह देश जहाँ जाना है अवश्यमेव,
भव-भ्रम-यामिनी-विनाशी कब होगा प्रात ?
मिलन-महोत्सव-मुहूर्त कब होगा मूर्त,
विकसित होगा कब जीवन विमल गात ?

प्रथम सर्ग, १५

लेखक का मानस चिन्तन-प्रधान है। वह विचार-सूत्रों को परस्पर पिरोना और उनकी मनोहारिणी माला बनाने में निष्णात है। अपनी सरस तूलिका से नवोद्भावनाएँ भी अपने इस काव्य पटल पर अंकित कर कवि ने पाठकों के लिए विचार-सामग्री प्रदान की है। उदाहरण के लिए रावण की बीस भुजाओं और सर पर गधे के चिह्न के विषय में ऊहात्मक चित्रण देखिए :—

गमनागमन में प्रकाश—गति से भी तीव्र,
पुष्पक—से यानों की नभग छावनी है कुंज।
पदी, अश्व, गज, रथ, देशिक, अमित्र, मित्र,
विष्टि, चर, नाविक, भृतक हैं सभी अरुज।
मौल, श्रेणी, गुप्तचर, अटवी, चिकित्सकीय,
अस्त्र-शस्त्रागार ले त्रिलोक में रहा है पुंज।
हस्त पशाकृष्टि, जामदग्न्य सारयुक्त दक्ष,
विंशति प्रकार वाहिनी का नाथ बीस भुज।

प्रथम सर्ग, ५

लेखक ने बीस भुजाओं को बीस प्रकार की सेना का प्रतीक माना है। इसी प्रकार 'गदहा' शब्द के एक अर्थ गद अर्थात् रोग को हरने वाला वैद्य मानकर सर्ग एक के सातवे छंद में रावण को आयुर्वेद के समस्त अंगों का ज्ञाता माना है और उसके सर पर गधे के चिन्ह को इस रूप में चित्रित किया है।

सम्पूर्ण काव्यकृति रचनाकार के अध्ययन की गंभीरता एवं काव्यसृष्टि की स्पृहणीय क्षमता को व्यक्त करती है। बौद्धिक अभिव्यक्तियों के बीच कवि हृदय की सरसता तिरोहित नहीं हुई है। लेखक ने एक बहुचर्चित विषय को अपने चिंतन-मनन द्वारा विचार-प्रवण पाठकों को सुलभ कर हिन्दी के भण्डार की गौरवमयी अभिवृद्धि की है।

'विभीषण' खण्डकाव्य का प्रकाशन 'मानस संगम' के प्रकाशनों की शृंखला में एक प्रशंसनीय प्रकाशन है। जहाँ तक हमारी जानकारी है 'मानस संगम' भारतवर्ष में अपने ढंग का अप्रतिम संस्थान है। इसकी मूल धुरी के रूप में श्री बद्रीनारायण तिवारी ने अल्पकाल में ही 'मानस-संगम' के कार्य-कलापों का जो कीर्तिमान स्थापित किया है वह सर्वतो-भावेन स्पृहणीय है। इससे तिवारी जी की नियोजन-क्षमता, चारुता, सुरुचिसम्पन्नता, सांस्कृतिक चेतना एवं कर्तव्यनिष्ठा आदि उन अनेक सद्वृत्तियों का परिचय मिलता है जिससे मानवता का शृंगार होता है, उसे गरिमा प्राप्त होती है।

'मानस संगम' का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक एवं उदार है। इसके आयोजन में भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रीय विद्वानों के अतिरिक्त विदेशों के भी विद्वज्जन सम्मिलित होते हैं। सभी धर्म एवं सम्प्रदाय के मतावलम्बियों को समय-समय पर 'मानस संगम' अपने कार्यक्रमों में आमंत्रित करके अपनी उदार प्रवृत्ति तथा ज्ञानार्जन एवं ज्ञानार्चन की परमपूत भावना को साकार करता रहता है।

'मानस संगम' के सद्प्रयासों से ही महानगर में 'तुलसी उपवन' एक साहित्यिक पर्यटनस्थल बन सका है। इसके निर्माण में भी श्री तिवारी जी की सूझ-बूझ तथा सक्रियता प्रशंसनीय है।

अन्त में मानस संगम को मैं इस उत्कृष्ट रचना 'विभीषण' के प्रकाशन हेतु साधुवाद देता हूँ और लेखक की सृजनात्मक क्षमता का अभिनन्दन करता हूँ।

प्रेमनारायण शुक्ल
भू० पू० अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

अपनी बात

हिन्दी साहित्य में राम-कथा के विभिन्न पात्रों को लेकर बहुत कुछ लिखा गया है। राम, लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न, सीता, उर्मिला माण्डवी तथा हनुमान आदि पर तो दर्जनों ग्रन्थ लिखे गए हैं । पं० उमादत्त सारस्वत 'दत्त' ने 'मन्दोदरी' को अपने काव्य का विषय बनाया। कवियों की लेखनी से रावण भी अछूता नहीं रहा। श्री हरदयाल सिंह ने 'रावण' महाकाव्य लिखकर एक नई परम्परा का श्री गणेश किया, जिसके अन्तर्गत असुर को भी नायकत्व प्रदान किया गया है प्रस्तुत रचना राम काव्य की इसी शृंखला की एक कड़ी है।

'विभीषण' का अर्थ है विशेषतया भीषण। किन्तु, विभीषण आकार से ही भीषण थे, गुणों से नहीं। वे 'यथा नाम तथा गुण' न होकर नाम के विपरीत गुण वाले थे। आदि कवि वाल्मीकि ने उन्हें धार्मिक पुरुष के रूप में चित्रित किया है—विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः।

—वाल्मीकि रामायण, ७।१०।६

कवि विभीषण को धर्मात्मा कहकर ही सन्तुष्ट नहीं होता वरन् यह भी लिखता है कि वह सदा ही धर्म-कार्यों में रत था तथा पवित्र था।

अध्यात्म रामायण में विभीषण को नीतिवान, धार्मिक तथा ज्ञानी भक्त के रूप में चित्रित किया गया है। वह राम की शरण में जाने पर स्तुति करते हुए प्रार्थना करता है—

कर्मबन्ध विनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् ।
त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ॥
न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषय सम्भवनम् ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥

—अध्यात्म रामायण, ६।३।३६-३७

अर्थात् हे प्रभो ! सांसारिक कर्मपाशों के नाश के लिए भक्तियुक्त ज्ञान दीजिए । साथ ही, अपना ध्यान और पारमार्थिक कल्याण प्रदान कीजिए । मैं ऐन्द्रिय विषयों में उद्भूत सुखों की इच्छा नहीं करता, वरन् मुझे अपने कमल चरणों की भक्ति का दान दीजिए ।

गोस्वामी तुलसीदास ने उसे भक्त, केवल भक्त के रूप में चित्रित किया है । उनके 'मानस' में भी वह धार्मिक एवं नीतिज्ञ है उसके घोर तप करने के पश्चात् जब सृष्टि कर्ता ब्रह्मा उससे वर मांगने को कहते हैं तब वह केवल भगवान के चरणों में निश्चल प्रेम माँगता है—

गये बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र वर माँगु ।
तेहि माँगेउ भगवन्त-पद कमल अमल अनुरागु ।।

—रामचरित मानस, १।१७७

विभीषण सम्पूर्ण लंका में अपने उच्च विचार, सज्जनोचित व्यवहार तथा न्याय-पथ-गामिता के लिए प्रसिद्ध है । स्वयं रावण भी उसे बहुत मानता है । तभी तो वह रावण के क्रुद्ध हो जाने पर भी समझाने का साहस करता है । कुम्भकर्ण तो उसके प्रत्येक कार्य का समर्थक है । यहाँ तक की युद्ध भूमि में—

धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन ।
भयहु तात निसिचर कुल भूषन ।।
बन्धु बंस तैं कीन्ह उजागर ।
भजेहु राम सोभा सुख सागर ।।

—रामचरित मानस, ६।६३।४

—कहकर राम की शरणागति को भी उचित ठहराता है ।

दक्षिण की 'रावण विजयम्' (कोयित्तपुरान कृत आदि कई रामायणों में भी उसे श्रेष्ठ ज्ञानी के रूप में चित्रित किया गया है ।

विभिन्न ग्रन्थों में जिसका चरित्र इतने उदात्त रूप में वर्णित है, उसे देश द्रोही की संज्ञा देना एक प्रकार से उसके प्रति घोर अन्याय है। यदि संकीर्ण दृष्टि का परित्याग कर मुक्त हृदय से विचार किया जाए तो प्रतीत होगा कि इस लोक प्रवाद में सत्य का अंश रंच मात्र भी नहीं है। सुग्रीव ने भी तो यही किया था, किन्तु, सुग्रीव का नाम देश द्रोहियों में क्यों नहीं गिना जाता है? दोनो को ही उनके अग्रजों ने अपमानित कर निकाल दिया था। दोनों ही राम की शरण में पहुंचे तथा राम ने दोनों के भाइयों को युद्ध में मारा। दोनों की परिस्थितियों पर विचार करें तो विभीषण ने अपने स्वार्थ के लिए भाई का विरोध नहीं किया वरन् भाई रावण के कृत्यों का विरोध किया था। एक डाकू है। वह गरीबों की सहायता करता है, अपने साथियों की समृद्धि का ध्यान रखता है, किन्तु, है अनाचारी दस्यु। वह मृत्यु का मेला रचता है, स्त्रियों की माँग पोंछता है और कन्याओं को बलात हर लेता है। यदि उसका भाई या पुत्र उसका विरोध करे तो क्या वह देश द्रोही है? प्रह्लाद ने पिता का विरोध किया और नृसिंहदेव का साथ दिया। विभीषण यदि जनक, दशरथ या ऐसे किसी राजा का भाई होता और उसके विरुद्ध शत्रु का साथ देता तो दोषी माना जाना चाहिए था, किन्तु उसने विरोध किया रावण की अनैतिक तथा घृणित प्रवृत्ति का। ऐसी स्थिति में उस पर देशद्रोह का आरोप कहाँ तक उचित है, यह स्वयं में विचारणीय है।

मेरी दृष्टि में विभीषण एक आदर्श भक्त है। वह सत्य को सर्वोपरि मानता है। एक बार महात्मा गाँधी ने कहा था—"तुला के दो पलड़ो में सत्य और देश रखे जाएँ तो सत्य का पलड़ा भारी होगा! मुझसे कहा जाए कि एक को ग्रहण करो तो मैं सत्य को अपनाऊँगा।" भक्त विभीषण ने भी यही किया। उसने राम रूपी सत्य को ग्रहण किया।

मैं काफी दिनों से विभीषण पर कुछ लिखने की सोच रहा था। दैवयोग से गतवर्ष सितम्बर में 'मानस संगम' (कानपुर) के संयोजक श्री बद्री नारायण

निवारी का एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें उन्होंने राम-कथा के किसी पात्र पर रचना भेजने का अनुरोध किया था। प्रस्तुत 'विभीषण' काव्य उनकी उसी आज्ञा की पूर्ति है।

इस रचना में मैंने, रावण के बीस भुजायें थीं दस शीश थे, उन सबके ऊपर गदहे का सर था आदि, आज के बौद्धिक प्राणी द्वारा अग्राह्य तथ्यों को इस रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है कि वे तर्क सम्मत प्रतीत हों। इस प्रयास में मैं कहा तक सफल हुआ हूँ, कह नहीं सकता। इसके निर्णायक तो सहृदय पाठक ही हैं।

घनाक्षरी सीतापुर जनपद की प्रकृति है। उसी के एक रूप—रूप घनाक्षरी में आद्यन्त यह रचना है। एक प्रसंग विशेष की समाप्ति पर सवैया छन्द है। रचना शिल्प की दृष्टि से प्राचीन होते हुए भी नयापन लिए हुए है।

प्रस्तुत काव्य परमादरणीय श्री रामजीदास कपूर की कृपा प्रेरणा तथा सहायता के बिना कदापि पूर्ण नहीं हो सकता था। उन्होंने प्रत्येक छन्द को जितने मनोयोग से देखा है, संशोधित किया है—यहाँ तक कि कुछ छन्दों का नवीन संस्कार तक किया है, वह सब उनके अगाध स्नेह का व्यञ्जक है। वे पितृ तुल्य हैं। आभार-प्रदर्शन कर मैं उनके स्नेह का अपमान करना नहीं चाहता। पूज्य बाबूजी (कविवर पं० उमादत्त सारस्वत "दत्त") तो इस समस्त रचना-प्रक्रिया के मेरुदण्ड ही हैं। प्रस्तुत खण्ड-काव्य उनके श्री चरणों का ही प्रसाद है। हिन्दी सभा के वर्तमान अध्यक्ष श्री रामस्वरूप अवस्थी 'रूप' से भी समय-समय पर सत्परामर्श मिलता रहा है। उनके प्रति 'मौन' ही संभवतः मेरी भावनाओं को व्यक्त कर सके।

परमादरणीया डा० (श्रीमती) महादेवी वर्मा, डा० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह, श्री गोपाल कृष्ण कौल (प्राक्तन हिन्दी प्रोड्यूसर, आकाशवाणी दिल्ली) तथा डा० प्रेमनारायण शुक्ल ने इस लघु कृति पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर इसके गौरव को कई गुना बढ़ा दिया है। एतदर्थ इन अग्रगी साहित्यिक

पुरोधाओं के चरणों में हृदय की समस्त श्रद्धा सँजोकर प्रणाम निवेदित करता हूँ। उनकी यह महती कृपा मेरे लिए वरदान स्वरूप है।

अन्त में, इस काव्य-कृत्ति को सुधी पाठकों के हाथों में इस आशा एवं विश्वास के साथ सौंप रहा हूं कि वे इसका समुचित मूल्यांकन करेंगे। मुझे हार्दिक सन्तोष है कि इसके व्याज से मैंने रामकथा अपने ढंग से कहने की चेष्टा की है–वह राम कथा जो–

राष्ट्र के संकट का समाधान है,
व्यञ्जना नैतिकता के विचार की।
संगठना का अनूपम रूप है,
सिद्धि हो शील-विवेक-प्रसार की।
द्वन्द्व के द्वन्द्व में है जय सत्य की,
गाथा प्रसिद्ध है आत्म-सुधार की
वन्दना राम की, राम के नाम की,
राम-कथा-अकथा-उपकार की।

और अब तो बस—

आपरितोषात् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोग विज्ञानम्।

सीतापुर (उ० प्र०)
रामनवमी
२१ अप्रैल, १९८३ ई०

विनीत
(डा०, गणेशदत्त सारस्वत

आशीर्वचन

गौरव दें गुरु काव्य स्वनाम का,
लेखनी में गिरा-शासनादेश हो।
भास्वर भानु प्रताप द्वियाम दें,
सूक्ति-सुधा में सुधांशु-प्रवेश हो।
वाणी विनम्र रसाल-लदी हुई,
काल-जयी-यश से सित केश हो।
जीत के जीव को जीवे कपूर हो,
'दत्त उमा'-सुत सिद्ध 'गणेश' हो।

—कविवर श्री रामजीदास कपूर

भूरि भावनाओं से भरित भव्य भारती हो,
भूषणों से भूषित प्रताप के प्रसर हो।
'अखिलेश' दूषित-दुरित दूर होवें सद्य
कल्पना-कलित-कमनीय-काव्यकर हो।
प्रतिभा-प्रभाकर क्षपाकर हो सौम्यता के,
छन्द रचना के आदि स्रोत मानसर हो।
खण्ड-काव्य विमल'विभीषण'की सर्जना से
'श्रीयुतगणेशदत्त' अजर अमर हो।

—आशुकवि 'अखिलेश' त्रिवेदी

कवि 'उमादत्त' रस सिद्ध ज्ञानवृद्ध वन्द्य,
पाया उनसे है प्रतिभा का रिक्थ जो महान।
उऋण हुए हो पितृऋण से वरेण्य तुम,
भक्त के ललित लीलामृत का कराके पान।
उपरागमुक्त कीर्ति-कामुदी विभीषण की,
आदिगन्त तानगी तुम्हारे यश का वितान।
नित्य नव्य दिव्य काव्य सृष्टि का विधान कर,
सार्थक स्वकीय करो सारस्वत अभिधान।

डा० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह

मंगलाचरण

[१]

मंगलवरण, गजवदन, रदन एक,
कलुष-कदन, भुवि-पालन-सृजन लय।
अभरण-भरण, शरण-अशरण जग
तारण-तरण चारु चरण हरण-भय।
वर-द-नयन, बुद्धि-अयन, चयन-ज्ञान,
पावन परम पूज्य प्रथम त्रिताप-क्षय।
मर्दन-मयन-सुत शिरसा-नमन भूरि,
मदन-मद-न सिद्धि-सदन गणेश जय।

[२]

वीणा-यष्टि-धारिणी, प्रसारिणी अभीष्ट-इष्टि,[1]
वर्ण-साधना की सिद्धि, अभिवृद्धि-प्रज्ञा-कृष्टि।[2]
ऋक्ष-अक्ष-मालिनी, प्रसिद्ध हंसवाहिनी है,
भाव-सम्पदा-समृद्धि, दिव्य-चेतना की सृष्टि।
वाणी रसना में, उर-देश में उमा हो रमीं,
श्रुति श्रुति में हों लोचनों में विमला हो दृष्टि।
सरसो सरस्वती ! सदैव पद्म-आसना हो,
अन्तस, में मेरे कर सूक्ति-सीपजों की वृष्टि।

[३]

काव्य की सहोदरा वसुन्धरा प्रफुल्लकर,
आरती उतारूँ नित्य मातृभूमि की विमल।
जननी-जनक पद-अर्घ्य दे पखारूँ पद,
गौरव गणेश गुरुजन्य प्रतिभा के बल।
पूर्व पुरुषों की शीर्ष सुकृति-सँजीवनी दे,
सिद्ध-साधकों की दे समस्त सिद्धियाँ अचल।
भक्ति-कामधेनु-क्षीर-सीकर-प्रसक्त-स्वर—
गाथा-कल्प-कन्दली प्ररोह शारदे ! सफल।

[४]

आदिकवि[1], कालिदास[2], भट्टि[3], भवभूति[4], भास[5],
जयदेव[6], युवराज[7]. कविराज[8], बलराम[9], ।
कम्बन[10], दिवाकर[11], श्रीरामन[12], अमरनाथ[13],
सन्तएकनाथ[14], नागछन्द्र[15], स्वयंभू[16] ललाम
पणिक्कर त्रय[17], आतुकूरि मोल्ल[18], कृत्तिवास[19],
चन्द्रावती[20], ताराचन्द[21], गोविन्द[22] स्वधन्य नाम।
तुलसी[23], निराला[24], दत्त[25], मैथिलीशरण[26] आदि,
राम-काव्य-गायकों के सीताराम को प्रणाम।

[५]

संसृति के सुख की गिरि-धारिका,
राधिका रानी को मेरा प्रणाम है।
सिद्धि-प्रदायिका, ऋद्धि-विधायिका,
वाणी-शिवानी को मेरा प्रणाम है।
देव-त्रिदेव की शक्ति अनादि जो,
भक्ति-भवानी को मेरा प्रणाम है'
मुक्ति-भरी अभिव्यंजिका मुक्ति की,
राम कहानी को मेरा प्रणाम है।

एक

[१]

सागर के मध्य जातरूप की पुरी है मानों,
तोयधि-तरंग में विभासित है कंज-व्रात ।
रूप - रस - लोलुप- भ्रमर - यातुधान - वृन्द,
पीकर पराग-सीधु[1] है समीर मन्द-गात ।
गगन-विचुम्बित त्रिकूट-शिखरों से झाँक,
हेम-प्रभा-मण्डित विकीर्ण हो रहा प्रभात ।
काकली विहंगमों की भेरी-रव, शंख-नाद
शम्भु-अर्चना में बहा सामगान का प्रपात ।

[२]

कंचन - विमण्डित जटित रत्न-हीरकों से,
करते प्रवाल उषा-सान्ध्य की प्रभा-प्रसूत ।
रचना विचित्र चित्र-चित्रित अनूप देख,
लज्जित विधाता की हुई है चातुरी प्रभूत ।
अलका मलीन दीन-हीन भूमि-लुण्ठित-सी,
वैभव-दशानन समक्ष भिक्षु पुरहूत ।
लंक कीं समृद्धि-सिद्धि करती यही है सिद्ध,
संपति त्रिलोक की हुई है यहीं पुज्जीभूत ।

[३]

संग सिद्धियो के है सुमुख हाथ बाँधे खड़ा,
ऋद्धियाँ समस्त हैं बलात करतीं निवास ।
निद्धियां निरन्तर नमित परिचारिका-सी,
राग-रागिनी सलास्य रचतीं विलास-हास
वैभव समक्ष अति रंक-सा कुबेर-कोष,
ऐसी कौन सम्पदा नहीं है जिसका विभास ?
चंचला अचल बने चारण बिरचि-वेद,
पूजा-ग्रहणार्थं स्वयमेव शम्भु आते पास ।

सूर्य और चन्द्र दिन-रात यश-गाथा लिखें,
वियत-प्रपत्र पर अक्षर हैं तारकेव[1]।
मार्जनी चलाते मन्द-मन्द हैं मरूत–गण,
पानी भरते हैं दत्तचित्त हो वरूणदेव।
आठो लोकपाल खड़े भृकुटि निहारते हैं,
शिष्टि[2]-प्रतिपालन की उनकी बनी है टेव।
काल-चोबदार घूम-घूम करता है घोष,
रावण ही शासक है एकछत्र एकमेव।

[५]

गमनागमन में प्रकाश-गति से भी तीव्र,
पुष्पक-से यानों की नभग छावनी है कुज।
पदी, अश्व, गज, रथ, देशिक, अमित्र, मित्र,
विष्टि, चर, नाविक, भृतक हैं सभी अरुज।
मौल, श्रेणी, गुप्तचर, अटवी, चिकित्सकीय,
अस्त्र-शस्त्रागार ले त्रिलोक में रहा है पुज।
हस्तपशाकृष्टि, जामदग्न्य सारयुक्त दक्ष,
विंशति प्रकार वाहिनी[3] का नाथ बीस भुज।

[६]

खाद्य, प्रतिरक्षा. शिक्षा, वास्तु, श्रम, पर-राष्ट्र,
यातायात, योजना, स्व-राष्ट्र, प्राविधी विशाल।
सक्षम प्रमुख के अधीन है विभाग प्रति,
जिनका नियन्ता है प्रसिद्ध भूप दशभाल।
ककुभ[4] दशों से कर-भोज्य के उगाहने से,
कहते प्रजानन दशानन महाकराल।
चार वेद, षट-शास्त्र वक्त्र[5] जिसके हैं बने,
ऐसा प्राज्ञ, पण्डित, मनीषा लंक-रक्ष-पाल।

आयु-वेद के प्रसिद्ध-अष्ट-अंग[1] सिद्धि-सिद्ध,
ओषधि-प्रयोग-नाम-रूप-विज्ञ है अकूत।
भेषज के ज्ञान की प्रकाम उपलब्धियाँ हैं,
करता रहा है शोध नित्य प्रतिभा-प्रसूत।
अग्निवेश, सुश्रुत, चरक गद-हा[2] से श्रुत,
चिह्नित मुकुट राजमुद्रा ज्ञानादर्श पूत।
शासन दशानन ककुभ-व्याप्त मूलमन्त्र
"सुखी हों, समृद्ध हों, निरामय हों सर्वभूत।"

[८]

कुम्भकर्ण जनुज प्रचण्ड है पराक्रम में,
काल की भुजाएँ भी हैं जिसने कसीं मरोड़।
शूल पाणि देख के सशंकित हों शूलपाणि,
चक्र-धार से ली हरि-चक्र की तिषा[3] निचोड़।
डगमग डोलती है विधि की सृजन-बुद्धि,
रथ अंशुमाली का वलात ही दिया है मोड़।
अग्रज-सदृश बिना वर के वरेण्य वर,
युग की शिला पै चिह्न-चरण रहा है छोड़।

[९]

एकनिष्ठ सुप्रतिष्ठ है विमातृ बन्धु लघु,
सत्यनिष्ठ राम-चरणारविन्द-चंचरीक
नीति में प्रतीति, कभी बोलता नहीं अलीक,
ज्ञान-ज्योति का अनीक[4] भक्ति का लिए प्रतीक।
रसना रदन बीच, भीति भव-भीति की न,
गति है विभीषण की, भीषण है लंक-लीक।
त्याग सम्पदा के भोग, पा सुयोग आत्म-योग,
वेध षटचक्र कुण्डली को रमा ठीक-ठीक।

सौध–कलधौत में विभीषण विराजमान,
सुख-सुविधा-समेत सिद्धियाँ बनी कपूर।
सौख्यदा अमौघि शान्ति-स्वस्तिदा-समन्विता है,
षोडशोपचार विधि-पूजन में कोहनूर।
चंपक की वाटिका में चंचरीक के समान,
प्रखर प्रलोभनों से किन्तु रहता है दूर।
करता निरन्तर ष क्षर[1] का मंत्रजाप,
भाव अनासक्त ज्ञान भक्ति-भावना में चूर।

[११]

ईश के भजन में सदैव रहता है लीन,
अर्चना-स्मरण तन-मन के बने हैं अंग।
श्रवण श्रवण करते ही रहते हैं गुण,
प्रभु-चरणों में चित्तवृत्ति है रमी अभंग।
दास्य में कभी तो कभी सख्य-भावना में डूब,
करता निवेदन है आत्म-अनुभूति रंग।
वन्दना के वर्ण वर्ण-साधना की दिव्य सिद्धि,
जीवन संजीवन है भक्ति- नवधा के संग।

[१२]

पूजा विष्णु की है कभी शिव की उपासना है,
शक्ति-समाराधना कभी है चलती अभंग।
प्रकृति-पुरुष द्वैत होता कभी एक संग,
नीराकार, रूपाकार, निराकार ब्रह्म-रंग।
ज्ञान के स्वरूप का विवेचन विशुद्ध कभी,
हठयोग-द्वारा प्रतिपादित हैं आठ अंग।
भक्ति-सिद्धिदा को सिद्ध करता विविध विधि,
समदृष्टि-व्यञ्जक अनेकानेक हैं प्रसंग।

[१३]

आत्म-ग्लानि-पूरित विभीषण हो दीन-हीन,
मूर्ति के समक्ष दत्तचित्त हो लगाता ध्यान
सुमन-सुमन, प्राण-दीप, भाव-अक्षतों से,
अश्रु का चढ़ाके अर्घ्य पूजता दया निधान
इष्ट है समष्टि में समाहित हिरण्यगर्भ[1],
अणु-परमाणु में प्रकाशित है आत्म ज्ञान !
उत्तम उपासना-त्रिवेणी-अवगाहन से,
मानसी-प्रतीक-परा संग खोजता निदान।

[१४]

चिन्तन-मनन अविराम अष्टयाम का है,
धारणा यही है किस भाँति लक्ष्य की हो सिद्धि !
कैसे अनासक्त कंज-पत्र-तुल्य जीवन हो,
जड़ता-विनाशिनी हो कैसे ज्ञान की समृद्धि।
भीषण तपस्या साध संयत विभीषण है,
दूषण-विरत गुण-ग्राही-प्रतिभा की वृद्धि।
एक निष्ठ चातक-सा टेक राम-नाम की है,
इष्टदेव-साधना–समाधि की हुई प्रसिद्धि।

[१५]

करता विचार—"कौन हूं मैं, क्या प्रयोजन है,
आया किस लोक से हूँ कुछ भी नहीं है ज्ञात ?
रहना यहाँ है किस रूप में न जानता हूँ,
सहने पड़ेंगे दुःख कितने त्रिताप-जात ?
कौन वह देश जहाँ जाना है अवश्यमेव,
भव-भ्रम-यामिनी-विनाशी कब होगा प्रात ?
मिलन-महोत्सव मुहूर्त कब होगा मुर्त,
विकसित होगा कब जीवन विमल-गात ?

"सृष्टि का नियन्ता अभियन्ता है न जाने कौन,
किसके प्रकाश से प्रकाशित हैं सोम-मित्र ?
किसके निदेश से प्रवहमान पवमान,
करती प्रदक्षिणा वसुन्धरा बनी विचित्र ?
तूलिका कमाल की चलाता चित्रकार कौन,
अम्बर-पटल पै सजाता भावना के इत्र ?
कौन जड़-जंगम के दृश्य में अलक्षित हो,
लक्ष-लक्ष रचता चरित्र-रचना-पवित्र ?

[१७]

"ब्रह्म और जीव है अभिन्न भिन्न-भिन्न या कि
भिन्नाभिन्न हैं, प्रमाण-सिद्ध है विचार कौन ?
कारण जगत का प्रणव या स्वभाव-काल,
या कि आत्मतत्व ही, प्रसिद्ध है विचार कौन ?
माया है विकृति किंवा प्रकृति महेश्वर की,
अपरा-परा के मध्य विद्ध है विचार कौन ?
ध्यान-मग्न हो सदैव रत है विवेचना में,
द्वन्द्व-द्वन्द्वातीत में निषिद्ध है विचार कौन ?

[१८]

जाने कितने हैं वर्ण, सम्प्रदाय और पंथ,
मर्म-अवहेलित है मानव भ्रमित आज।
टकराव-राव विखराव विश्व-व्यापी बने,
द्वेष-सिन्धु में निमग्न है विवेक का जहाज।
पृथक-पृथक राग अपना प्रसारते हैं,
भिन्न-भिन्न ढफली, न तालमेल का है साज।
जीवन का मूलमन्त्र एकमेव स्वार्थ-सिद्धि,
नष्ट हो रहा चरित्र, भ्रष्ट हो रहा समाज।

आँख खोल देखें तो लगेंगे सभी धर्म एक,
अन्तर में अन्तर कहीं है रंच मात्र भी न।
मार्ग भिन्न भिन्न किन्तु ध्येय में न भेद कुछ,
एक ही विराट में हैं पंथ पाथवाही लीन।
वाद चाक चिक्य से चमत्कृत न होवे चित्त,
ऊहापोह–जाल में है उचित न होना दीन।
मनवन्तरों से मत करते यही हैं व्यक्त,
भक्ति–नवधा की जाह्नवी के बनें पीन–मीन।

(२०)

सारे झगड़ों का बस कारण यही है एक,
प्रतिकूल को ही अनुकूल मान बैठे हम।
दृष्टि–पथ बोझिल है ओझल है सार–तत्त्व,
मँझधार को ही उपकूल मान बैठे हम।
सुधा[1] में सुधा[2] का भेद करना गए है भूल,
खरतर शूल को ही फूल मान बैठे हम।
समरसता की चित्त–चेतना हुई है शून्य,
राग–द्वेष को ही सुख मूल मान बैठे हम।

(२१)

धर्म में विरोध का न लेश मात्र भी है अंश,
सर्व सृष्टि ईशमय प्राणियों को है निदेश।
दृश्यादृश्य सारे भिन्न लीला के प्रकार मात्र,
भोग–उपभोग में न लोभ का हो सन्निवेश।
मान अभिमान त्याज्य ग्राह्य स्वाभिमान रूप,
प्रभु चरणों में लीन जीव हों विगत क्लेश।
पाप पर-पीड़न है, सत्य परमार्थ–सिद्धि,
सर्वभूत–हित षटदर्शनों का उपदेश।

[२२]

"कैसी मूढ़ता है सब जानते हुए भी लोग,

भोगों में प्रसक्त हैं न बिगड़ी बनाते रंच

नश्वर जगत मान बैठे अविनश्वर हैं,

माया-जाया-छाया का सहर्ष झेलते प्रपंच।

फिर भी न चेतते हैं, हूलते विषम हूल,

काम-क्रोध-लोभ-मद-मोह के विकार पंच।

नाटक के पात्र मात्र सूत्रधार के हैं हम,

एक दिन जाना ही पड़ेगा छोड़ रंगमंच।

[२३]

"आता है समझ में न जाने किस हेतु लोग,

आपस में यों ही एक दूसरे से जाते लड़।

मूल छोड़ पात-पात सींचने का यत्न कर,

जड़बुद्धि ! गहरी जमाना चाहते हैं जड़।

ऐसी अहमन्यता कि आपको नियन्तामान,

बैठे आत्म-हंता बन गर्व में गए हैं गड़।

धूल में मिलेंगे फूल चाहे जितना लें फूल,

पीत-पत्र हो के पतझार में पड़ेंगे झड़।

[२४]

"मेरा और तेरा का विभाव बुद्धि का है मोह,

द्रोह में प्रवृत्ति हों न वृत्ति भोग से हो मुक्त।

काम-वासनाओं से न क्षुब्ध कभी अन्तस् हो,

भव्य-भावनाओं से हृदय हो सदैव युक्त।

सत्य-बोध जीव-आत्म-तत्त्व का प्रकाशक हो,

नाशक हो दूषित-विचार-अनाचार-शुक्त[1]।

जीवन की साधना का सार समाराधना का,

रति राम-पद में हो, मति हो विकार-मुक्त।

"धारणा-सुपथ से विपथ करने के लिए,
द्वैत-द्वन्द्व होते घेर लेते आसुरी हैं तत्त्व।
भेदबुद्धि भेदाभेद-भेद्य है न पाती कर,
वंचित वरण, आत्मरूप-सिद्धिदा-समत्त्व।
संशय-विमुक्त पृथकत्त्व का विनाश कर,
चिति[1] में समाती निर्मला हो प्राप्त अमरत्त्व।
आणव औ' शाक्त तथा शाम्भव की साधना से,
प्राप्त अनायास ही है होता जीव को शिवत्त्व।

(२६)

"स्थूल-सूक्ष्म-कारण धरे शरीर तीन रूप,
कर्म-भाव-ज्ञान के नवीन ग्रह-पिण्ड सिद्ध।
वासी क्रिया लोक के अनिश्चय से अस्त-व्यस्त,
तीन एषणाओं[2] में सदैव रहते हैं बिद्ध।
शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध की मधुर सृष्टि,
भावों की उपासना में लीन है यही प्रसिद्ध।
प्रज्ञासक्त ज्ञान का जगत अनासक्त व्यक्त
भोग रस जीवन का किन्तु वासना निषिद्ध।

(२७)

"इच्छा-क्रिया-ज्ञान का त्रिकोण रेखाकार रूप,
साधक समुन्नत ही केन्द्र में विराजमान।
तीनों लोक एक दूसरे से सर्वथा हैं भिन्न
समरसता का रंचमात्र भी नहीं है भान।
अपनी व्यवस्था के पृथक बन्धनों से बँधे,
मार्ग असमान अवरोहित-से भासमान।
एकाकार शिव-शक्ति-रूप की समन्विका हो
एक रस देती कर श्रद्धा स्व-वितान तान॥

इस [illegible] के [illegible] प्रकाश से हो,
ध्यान की धरा के अणु-अणु होते ज्योतिवन्त ।
स्वर डमरू के डोलते से दृश्यमान होते,
नृत्य-रत होते नटराज राज मूर्तिमन्त ।
लीन कर सारी सृष्टि जगती तुरीया-दशा,
जागृति-सुषुप्ति-स्वप्न-भास का है होता अन्त ।
नाद-अनहद से प्रपूरित है ब्रम्ह-रुन्ध्र,
आनँद-अखण्ड-सुधा-स्रोत बहता अनन्त ।"

(२९)

ऐसे ही विचारों का सदैव चलता है क्रम,
चाहना विभीषण की विजित करूँगा मन ।
केवल न कल्पना से, दृढ़-भावना में रत,
निग्रह-निकष पर कसता सुवर्ण-तन ।
धर्मव्रत धारिणी है देवी सरमा भी साथ,
करती प्रदग्ध वासनाओं का गहन वन ।
युगल स्वरूप मूर्तिमान प्रेम-साधना के,
राम-घनश्याम-हित चातक गए हैं बन ।

(३०)

शोध रहस्य रहे जग के जग,
खोज रहे सुख-शान्ति प्रकाम हैं ।
अन्तर-अन्तर दूर रहे कर,
भाव-अभेद-भरे निशियाम हैं ।
लंक-सरोवर में रमते द्वय,
पंकज-से कमनीय ललाम हैं ।
पूरक दोनों हैं साधना–सिद्धि के,
पंचम कोश[1] खुले अभिराम हैं ॥

दो

[१]

हाटकपुरी को देख भ्रमित हुई है मति,
चकित हुई है दृष्टि दिन अथवा है रात।
हीर-हेम-आभा-उत्स में है हँस का विभास,
रजत-छटा में चन्द्रिका का हास अवदात।
उन्नत अटा पै चढ़ तरु-तरु हेर-हेर,
चक्रित कपीश विथकित श्रम-श्लथ-गात।
घर-घर घूम-घूम धूम-तुल्य खोजता है,
सीता का पता न अब तक हो सका है ज्ञात।

[२ [

सोचते हुए उपाय हारे-से, थके-से रुके,
स्वेद-विन्दुओं से भर झलक रहा है भाल।
रेणु-कण रोम-रोम कुंकुम-से दीप्तमान,
तर्क-जाल के समान बिखरे हुए हैं बाल।
अधर रहे हैं सूख, भूल गए प्यास-भूख,
गति है अगतिप्राय मन्द हो रही हैं चाल।
पस्त, अस्त-व्यस्त वस्त्र, स्रस्त[1] है सुमन-माल,
हो निढाल पादपोपविष्ट अंजनी के लाल।

[३]

"भासता कि सारी दौड़-धूप हो गई है व्यर्थ,
अद्यावधि कोई भी न यत्न हो सका सफल।
कोना-कोना रनिवास का है छानमारा खूब,
चप्पा-चप्पा वाटिका का खोजता रहा विकल।
मठ और मन्दिर न छोड़ी यज्ञ शाला तक
देखी पाठशाला भी, न निकल सका है हल।
वेलना न जाने कितने ही और पापड़ हैं,
सीता-सुधि पाए बिना सकता नहीं हूँ टल।

[४]

"कार्य गुरुतर सीता-खोज का दुरूह महा,

सौंपा युवराज ने मुझे था नान के समर्थ।
खोजने में मैंने भी है कसर न छोड़ी कुछ,
तन-मन-प्राण से समर्पित हूँ एतदर्थ।
स्वजन-समाज को निराश ही रहा हूँ कर,
बीड़ा जो उठाया उसे दे सका न कोई अर्थ।
कोन-सा दिखाऊँ मुख साधना से हो विमुख,
कौन मान लेगा श्रम सारा हो गया है व्यर्थ।"

[५]

"आज्ञा थी कपीश की कि 'जाओ अविलम्ब सभी,
सीता खोजने में हो कदापि त्रुटि का न लेश।
नियत अवधि एक मास में हो कार्यपूर्ण,
परिकर-बद्ध सूचिकाग्र भी न छोड़े देश,
असफल शब्द मात्र स्वप्न में नहीं है सह्य,
अन्यथा कराल दण्ड काल के कठोर क्लेश।'
सिर पै दिया जो पाणि विफल न होगा कभी,
हारा क्या, सहारा राम-मुद्रिका का सन्निवेव।"

[६]

सागर के ज्वार-सा सतेज हुआ पौरुष है,
साहस अपार ऊर्मि-ओज का हुआ प्रसार।
पल भर में ही खिन्नता भी खिन्नता से बही,
दीन-हीन दीनता विलीन, हीनता है क्षार।
आशा-अभ्युदय-ज्ञानालोकिनी-उषा विलोक,
विभ्रम-निशाकरी-हताशा भी गई है हार।
ध्यान में समाए राम, देखा राम-मुद्रिका को,
भासा योग-प्राज्ञ-सा विमुक्त चेतना का द्वार।

सामने विभासमान सौध दिव्यलोक-तुल्य,
गगन-विचुम्बित विशाल-सा विशाल एक ।
पूत भावना से अभिमन्त्रित हैं भित्ति-चित्र,
रामायुध-अंकित प्रकोष्ठ–कोष्ठ हैं अनेक ।
दोनों ओर द्वार के हरि प्रिया[1] प्रफुल्लिता है,
दीप्तमान दीपक की ज्योति में जगा विवेक ।
यज्ञ-धूम धूम-घूम नभ में मचाता धूम,
गुम्फित समीर में है राम-नाम-अतिरेक ।

(८)

"अचरज है नवीन क्रूर-कौणपों[2] के मध्य,
किस हरि-भक्त को मनोरम रमा निवास ?
साधना में लीन आततायियों के बीच कौन,
किसके सुयश का विकासित हुआ है व्यास ?
बन के वसन्त-दूत दे रहा संदेश कौन,
किस पतझार का है पल्लवित मधुमास ?
सन्त तीर्थराज-सा प्रकट अटवी पै दृष्ट,
स्वार्थ-परमार्थ-सिद्धि जाना उसके है पास ।"

(९)

सपदि कपींश ने विलोका सिद्ध आसन पै,
जप में निरत तप-विग्रह-सा मूर्तिमान ।
आकृति है सौम्य, भव्यवपुस[3] में दिव्यता है;
मानों अंशुमान मण्डलाकृति हो दीपिमान ।
राम का स्वरूप भासमान चित्त चेतना में,
मन-पुण्डरीक में मिलिन्द मानों लीयमान ।
स्वच्छ वाह्य अन्तर में अन्तर न लवलेश,
आप उपमान और कोई अन्य उपमा न ।

उतरी समाधि, देखा जप-अजपा में रत,
विप्रवेशधारी खड़े सामने हैं हनुमान।
राम-गुण-गान में हैं ऐसे हो निरत दोनों,
आस-पास का न शेष लेश भी रहा है भान।
"इस ब्रह्म-वेला में कृतार्थ करने को कौन
भासता प्रत्यक्ष ध्रुव सत्य ही विराजमान ?"
सुस्थिर विभीषण स्वनाम ले प्रकट बोला—
नाथ दर्शनों से पुण्यवान, अत्र को भवान[1] ?

[११]

"दीन-हीन-अधम-मलीन-पुण्यक्षीण जान,
नाशते त्रिताप-ताप, आए करने कृतार्थ।
शाप से उबारने को, अन्तस सँवारने को,
देते नव-भक्ति-थाप, आए करने कृतार्थ।
देव हैं कि देवदूत दिवलोक से जो यहाँ,
दिव्यता की लेके छाप, आए करने कृतार्थ।
अथवा अनन्य राम-सेवक-प्रणम्य-पूत,
किंवा राम ही हैं आप, आए करने कृतार्थ।"

[१२]

"देव हूं न देवदूत, नर भी प्रपूत नहीं,
राम-पद-पंकज का मात्र एक हूं भ्रमर।
सीता-शोध-हेतु छद्मवेश धर आया यहाँ,
ब्राह्मण नहीं हूं, लघु वानर हूं रक्षवर !
आंजनेय अभिधान, सूर्य ने दिया है ज्ञान,
पार करने को चला भवसिन्धु की लहर।
पुहुमी पृथुल[2] ही सुदेश अपना है सर्व,
नाथ अंशुमान-वंश रघु जिसके प्रवर।"

(१३)

पात्र प्रिय अनुमान, रामभद्र-भक्त ज्ञान,

शिरसा नमन कर बोला बन्धु-दशशीश।
"आसुरी प्रवृत्ति लीन रहती असत-मध्य,
तामसी-शरीर से न सधता भजन-ईश।
पूजा-पाठ-ज्ञान-भक्ति-कर्म का न मर्म ज्ञात,
काम-क्रोध-लोभ-रत प्राप्त हैं न पद-श्रीश।
हैं जो भक्त-वत्सल तो करके कृपा क्या कभी,
मुझ अधमाधम को शरण भी देंगे कीश!"

(१४)

"प्राणाधिक मानते स्वभक्त को हैं रघुनाथ,
होकर द्रवित दास-दुःख हरते अमाप।
कुछ भी अदेय नहीं, मुक्त ममता का द्वार,
केवल कृपा की कोर क्षार करती त्रिताप।
आया जो शरण में सुकण्ठ-सा लगाया कण्ठ,
अभय बनाया दल क्रूर बालि-पाप-शाप।
निश्छल समर्पित को अपना लिया है सदा,
धारें परितोष, राम-विरुद विचारें आप।

(१५)

"रहते विशुद्ध भावना के वशीभूत नित्य,
चाहिए उन्हें न दीप, धूप या कि अर्घ्य-दान।
उनके समक्ष प्रश्न छोटे या बड़े का नहीं
किंवा हो कुबेर, दीन-हीन, अज्ञ, बुद्धिमान।
रखते सदैव ही हैं शरण गहे की लाज,
मित्रामित्र-भेद का कदापि धरते न ध्यान।
ऐसे हैं उदार भक्त-वत्सल कृपानिधान,
भक्ति-अनपायिनी प्रदान करते महान।

(१६)

मेरी ओर देख आप कितना हूँ अकुलीन,
मन का मलीन, गुण एक भी नहीं है पास।
बल है न बुद्धि है, विचारों की नहीं है शुद्धि,
विग्रह-समान चित्तवृत्ति वानरी-निवास।
साधना का ढंग हो न रंग है उपासना का,
भक्ति-भावना का रंच-मात्र भी नहीं विभास।
कृपया विलोकिए कृपा का पारावार देके,
सौंप गुरु भार को उदण्ड को बनाया दास।

[१७]

"केवल मुझे ही नहीं प्रभु ने किया सनाथ,
महती कृपा से हैं कृतार्थ कितने ही जन।
केवट, अहल्या, बालि-बन्धु, नील अंगदादि,
क्षण में दया-वितान जिन पै गया है तन।
टेर प्रणतों की सुन देर लगती ही नहीं,
छिन्न-भिन्न होते विपदाओं के सघन-घन।
भक्त से बँधे हैं राम अन्यथा न लेना इसे,
ऐसा कौन जिसकी न बिगड़ी गई हो बन ?

[१८]

"भक्ति-कल्प-वल्लरी में रमता वसन्त नित्य,
फल पुरुषार्थ के फलेंगे उगे कर्म-गाभ[1]।
कामना विवेकमयी इष्टदा है चातक-सी,
जीवन की साधना को पूर्णता का होगा लाभ।
वृष्टि दया-दृष्टि की अवश्य ही रचेगी सृष्टि,
अम्बु-कृपा-सिक्त-अभिषिक्त होंगे लंक-आभ।
आप भी कृतार्थ बनने के लिए एक दिन,
जाएँगे जहाँ हैं स्वयमेव राम-पद्मनाभ।

पुलक प्रफुल्लित विभीषण विनीत बोला—
गदगद कण्ठ से कि "आपकी कृपा महान।
आशा-शुक्ति[1]-शक्ति दा है संचरित मानस में,
हो गया कृतार्थ, मिला स्वाति-दर्शनों का दान।
भासता यही है शीघ्र स्वप्नपूर्ण होंगे सभी,
लेश भी रहेंगे शेष मार्ग में न व्यवधान।
सिद्धि-भूमि-प्राप्ति की है भूमिका मिलन-रूप,
माध्यम हैं आप मेरे-राम के दयानिधान !"

[२०]

राम की कथा में इस भाँति गए दोनों डूब,
जान ही सके न काल कितना हुआ व्यतीत।
अन्तरिक्ष-मध्य ऋक्ष[2]-वृन्द भी विलीन हुए,
अस्ताचल-गामी सुत-वारिधि पड़ा था पीत।
"स्वस्थ हो विचारें करणीय साधना जो इष्ट,
सेवा-अवसर दें विभीषण करें पुनीत।
होता दिवारम्भ त्रास-दायक है लंक-गढ़,
इस कुटिया में छिपें आप, प्रार्थना विनीत।"

[२१]

"धन्यवाद कोटिशः उदार व्यवहार-हेतु,
ज्ञापित कृतज्ञता है करता हृदय मम[3]।
श्रम करना है अभी विश्रम न होना मुझे,
कार्य का अपूर्ण क्रम सकता नहीं हूं थम।
खोज-खोज हारा न किनारा लगता है कहीं,
घूम-घूम लंक-गढ़ नाक में हुआ है दम।
अब ढूंढ़ने के लिए जाऊँ किस ओर कहाँ,
आप ही बताएँ मार्ग होवे जो सरलतम।"

"चैत्रस्थ[1]-नन्दन[2] निदर, है प्रमथ[3]-तुल्य,,
इन्द्र का लजाती धाम वाटिका अशोक नाम।
वन्दिनी बनाया है जनक-नन्दिनी को वहाँ,
क्रूर रक्षिकाओं से घिरी है नित्य आठो याम।
त्रास-दा कठोर अनुशासन दशानन का,
डरता मरुत भी, प्रवेश है कठिन काम।
यम[4] की दिशा में चार योजन पै विद्यमान,
नक्रमुख[5]-वक्र-पथ-पाहरू पड़े प्रकाम ;"

[२३]

संग में उमंग-तुंग शोध-बोध-कामना ले,
भेद-वेध मार्ग को सवेग बढ़े हनुमान।
सुमन-सुमन-आशा[6]-ग्रन्थि-पंखुड़ी को खोल,
कानन[7] में काकली-मरुत दे रहा है ज्ञान।
मन्द-मन्द कालिमा निपातित है अन्तरिक्ष,
विहँसी उषा है कर पंगु सारथी का भान।
आके नभ-पथ में विलोका दिशिमण्डल तो,
वाटिका अशोक हुई नैॠत[8] से दृश्यमान।

(२४)

जातरूप-निर्मित-परिधि नभ चूमती-सी,
चारों ओर रक्षक अपार एक ही है द्वार।
वृक्ष-वृक्ष-रक्षिणी-विपुल-वाहिनी है वहाँ,
सर्वथा अगम्य भासता प्रविष्टि का विचार।
सीता-वह्नि-रेखा छिपी धूम-यातुधानियों में,
तिष्ठिता[9] अशोक-मूल राम को रही पुकार।
अति लघु रूप में उतर ओस-स्वन[10]-तुल्य,
पत्रों में तिरोहित हुए हैं अंजनी-कुमार।

आया उसी काल वायुमण्डल करोचता-सा,
कर्ण-कुहरों को लगा वेधने जयति-नाद ।
देखा वातजात ने कि पट्ट महिषी के संग
प्रकट दशानन अजेय वना निर्विवाद ।
अमित-प्रलोभन दे भूमिजा-समीप बोला,
"राम मुझ में ही, भूल राम, छोड़ अवसाद ।
एक मास अवधि समर्पण की देता और,
अन्यथा भजेगा कण्ठ चन्द्रहास अप्रमाद ।"

(२६)

रावण-निदेश-प्राप्त यामाचारियों से ग्रस्त,
राहु-केतु-छाया मानों चन्द्रिका रही निहार ।
"विधि की विडम्बना है सिंह की वधू पै क्षुद्र,
शशक है चाहता जमाना स्वीय अधिकार ।
कब तक वन्दिनी रहूँगी, हूँ विदेहजा मैं,
प्राणों का विसर्जन ही एक मात्र उपचार ।
शीघ्र हर मेरा शोक सार्थक अशोक बन,
रक्त-पुष्प वह्नि-व्याप्त फेंक एक दे अँगारा ।"

(२७)

अग्नि-याचना विलोक सानुकुल पा सँयोग,
तेज युक्त मारुति ने राम-मुद्रिका दी डाल ।
भ्रान्तिमान सीता के उठाते ही सजीव वना,
सुस्मृति कुरेदता-सा अंकित अतीत-काल ।
साथ राम-गाथ सुन पुलक-पसीजा गात,
कौन ? हो समक्ष, दुःख वक्ष का मिटा कराल ।
डूब रघुनाथ-ध्यान, माता का निदेश मान,
उतरे विटप से विनम्र अंजनी के लाल ।

नर-वानरों की मित्रता के वृत्त को बखान
करते प्रणाम बतला रहे स्वनाम—धाम ।
"परम पुनीत दर्शनों से कृतकृत्य आज,
हो गया है पूर्ण काम सर्वथा हूं पूर्णकाम ।"
दिखला प्रतीति-काज भूधर-समान देह,
लघु बन बोले—"अम्ब ! अभय दें आठोयाम ।
राम का गुलाम हूं, त्वदीय चरणों का दास,
आस-पास देख फल खा चलूँ, लगे प्रकाम ।"

[२९]

वानरी स्वभाव से उजाड़ी वाटिका-अशोक,
रक्षक-समूह दल अक्षय दिया सँहार ।
सुभट अपार भी न पा सके हैं वारापार,
ठहर न पाए ऐसी तन पै पड़ी है मार ।
कपि-गर्जना से मेघनाद हुआ अस्त प्राय,
हार के चला ही दिया ब्रह्म-अस्त्र-दुर्निवार ।
विधि का विधान मान मूर्छमान हनुमान,
नाग-पाश से निबद्ध लाये गए राजद्वार ।

[३०]

वैभव अपेक्षित नहीं है राज्य-आसन का,
रत्न के सिंहासन पै रावण विराजमान ।
साथ सांसदों के मन्त्रिमण्डल है आस-पास,
मध्य में सुशोभित विभीषण है दृश्यमान ।
राम-दूत जान लंकपति ने कहा—"अवश्य
कपि की उदण्डता का होना चाहिए विधान ।"
सारे स्वर एक साथ गूँजे वायुमण्डल में—
"प्राणदण्ड ही है एकमेव इसका निदान ।"

"परामर्श संमत का राजनीति के विरुद्ध,

दूत है अवध्य, मृत्यु दण्ड है अनिष्टकर।"

"शास्त्र-अनुमोदित विभीषण के कथ्य पर"

बोला माल्यवन्त भी "विचार करें विज्ञवर।"

अपर सचिव सकुचाता कहता है सत्य,

"अंग-भंग वानर हो घोषणा करें मुखर।

होती ममता है कपियों की पूँछ पै विशेष,

वालधी में वह्नि बाल छोड़ दें प्रकाशचर।"

(३२)

भावी का विधान देख, मान के गिरा का ज्ञान,

जान गए हनुमान लीला रचते हैं श्रीश।

रावण-मुखाकृति से स्वीकृति निहित लक्ष्य

तैल-सिक्त चीर-चीर से लपेट लूम-कोश।

अग्नि की लपट देख होके सूक्ष्मकाय शीघ्र,

ढीले नाग-पाश कर मुक्त हो गये कपीश।

त्वरित विराट वन कूद के अटा पै चढ़,

पल में जला दी लंक, देखा किया दशशीश।

(३३)

स्वर्णपुरी लंका का दहन देख होके क्रुद्ध,

बोला दशशीश सुभटों से—"वीरता है खूब!

आगत अहार भी न उदरस्थ पाए कर,

अपने ही भोजन से आप क्यों गए हैं ऊब?

एक तुच्छ वानर ने कैसा है नचाया नाच,

अज से निरीह रहे मुख में दबाए दूब।

किया नहीं काल-ग्रास, धर भी न पाए उसे,

चुल्लू भर पानी में मरो तो सभी जाके डूब।"

बोले यातुधान—"हम कायर नहीं हैं किन्तु,
प्राप्त था निदेश नहीं विवश हुए थे कर।
दूत है अवध्य राजनीति-प्रतिबद्धता से,
अंग-भंग होवे सर्व सम्मति हुई मुखर।
ऐसी ही परिस्थिति में बालधी जलानी पड़ी,
सहमति मौन का मिला था भवदीय स्वर।
न्याय-रक्षणार्थ आततायी है न मारा गया,
खून का पिया है घूँट मौन रह मान्यवर!"

(३५)

उत्तर की ओर देख कुछ देर मौन रह,
बोला दशशीश—प्रश्न सद्य है विचारणीय।
होना था गया हो अब और झंखना है व्यर्थ,
सब लें विचार जो भविष्य में है करणीय।"
"चिन्ता करना न योग्य हम कौणपों के लिए,
आपकी भुजाओं का पराक्रम अहरणीय।
सागर के पार हलचल है न ग्रहणीय
दुर्ग है अभेद्य, मौन रहना ही वरणीय!"

(३६)

बोला यों विभीषण विनत हो पदों पै पड़,
सत्य ही कहूंगा चाहे दण्ड दीजिए कठोर।
दी गई कुमन्त्रणा न व्यवहार्य है कदापि,
नाथ! शक्तिमान हैं, विवेक ज्ञान है अथोर।
द्रोह-कोह-मोह छोड़, नीति से न मोड़ें मुख,
चित्तवृत्तियों में जगे सत्य-सिन्धु की हिलोर।
जानकी है धूमकेतु जानकी बनी है हेतु,
भेजें राम-पास बने बात तो उभय ओर।

[३७]

"कुम्भ-भ्रूण-प्राप्ति से अकाल मथिला में पड़ा,
भूमिजा बढ़ी तो खण्ड-खण्ड हुआ चाप-हर।
कोशल में आई-कौशल ले विग्रह का,
सास विधवाएँ, दशरथ-सा मरा है नर।
राजी साथ राम राज्य-च्युत वनवासी हुए,
लक्ष्मण हैं निद्राहीन उर्मिला पड़ी उधर।
लंका का दहन हुआ आते ही विदेहजा के,
आदि से अनिष्टदा है, वापस उसे दें कर।"

[३८]

"सुन्दरी अनिन्द्य को बता रहा है धूमकेतु,
चाल शतरंजी चली सीता-वापसी के काज।
कैसी कूटनीति कालकूट कालिमा कराल,
समझ गया हूं खूब तेरी कथनी का राज।
मीठी छुरी तुल्य बात गरल-बुझी है कही,
भीषण विशेष है विभीषण! ये तेरा साज।
लंक है अभेद्य, भेद-नीति से न भेदी बन,
चाहता क्यों शीश पै तू अपने गिराना गाज?"

[३९]

वार किया पद का फिर यों कहा—
"सोलह दूनी न आठ पढ़ा।
नीति की रीति नहीं अनरीति है,
मान न स्वार्थ की भेंट चढ़ा।
वृद्धि दिवाला गया पिट क्या,
किस धातु का जाने गया तू गढ़ा।
क्यों अरि के लिए आप ही आप,
आकरण बैर रहा है बढ़ा।"

तीन

(१)

अग्रज दशानन से ताड़ित-प्रताड़ित हो,
बोला यों विभीषण—"न दोष मुझे देना बन्धु !
जिस शक्तिशाली इन्द्रघाती वाहिनी पै गर्व,
वह भी निकाम हो मरेगी कुल-सेना बन्धु !
उबरा न कोई राम-बैर-सरिता को तैर,
बिन पतवार ही पड़ेगी नाव खेना बन्धु !
लोहे के चने हैं चाब डाले बार-बार किन्तु,
सम्भव न लोहा राम भद्र से है लेना बन्धु !

(२)

"हित की कही जो बात अनहित मान उसे,
आपने सरोष किया मुझ पै पद-प्रहार।
अपशब्द जो भी कहे उनका न क्लेश लेश,
मात्र दुःख मेरा यही रख न सके दुलार।
मानते निपट नर राम को न जानते हैं,
कुटिल कुकाल ने विवेक को दिया है मार।
सोच परिणाम कण्ठगत हो रहे हैं प्राण,
दैव प्रतिकूल हुआ भासता है बार-बार।

(३)

"एक बार और भीख माँगता, नवाता माथ,
त्याग के दुराग्रह को छोड़िये कलुष-साथ।
तुष्टि भगिनी के व्याज वासना न साधें आप,
जान की बनेगी, जानें जानकी को पुण्यगाथ।
आद्या, आदिसम्भवा, त्रिलोक-व्यापिनी हैं शक्ति,
जिनकी उपासना अवश्य करती सनाथ।
होके शरणागत विनीत दें विदेहजा को,
समय अभी है फिर मींजना पड़ेगा हाथ।',

"पण्डित प्रकाण्ड हैं, प्रचण्ड भुजदण्ड भी हैं,
बुद्धि-बल से है लिया आपने त्रिलोक-मोह।
'ठकुर सुहाती' आत्मघाती नीति-भंजिनी है,
कीजिए विचार बन्धु ! त्याग रोष का प्ररोह।
संसृति अपार भार-वाहिनी भुजा समर्थ,
ज्ञान-निधि हरि की न पायी है किसी ने टोह।
प्रकटे वही हैं यातुधान-कुल-नाशने को,
उचित कदापि है न राम से निभाना द्रोह।

(५)

"पूजनीय प्रथित पुलस्त्य कुल में ले जन्म,
आपने क्यों बुद्धि अतिरेक को दिया है त्याग ?
भोग ही है जीवन न लक्ष्य भोग जीवन का,
भोग-साधकों को डसें भोग विषयों के नाग।
झंझावात काम का अकाम करता विवेक,
होता चिदाकाश में विनाश का अपूर्व राग।
शेष नर-वेष में विशेष विष को उँडेल,
रक्त-अम्बकों[1] से प्रलयंकरी लगाते आग।

(६)

"वश में किया है आशुतोष परितोष कर,
अपने करों से काट-काट के चढ़ा के शीश।
साधना की ऐसी एकनिष्ठ समाराधना की,
व्यथित विधाता हुए, चकित गिरीश, श्रीश।
चौदहों भुवन में हुआ है व्याप्त तूर्यनाद,
लहर-लहर जय बोलने लगा नदीश।
शक्ति-संग आरती उतार ली दिगम्बर की,
कुलदेवता ने है प्रदान की तुम्हें अशीष।

[७]

"तप बल से जो वरदान आपको हैं मिले,
उनको भला क्या कहो उचित लजाना बन्धु !
कठिन कुरोग है दरुपयोग राजशक्ति,
देश-जाति-गौरव को धूल में मिलाना बन्धु !
नीति से विरत हो अनीति-पथ-गामी बन,
निन्दनीय दीन-दु:खियों को यों सताना बन्धु !
एक अबला की हाय असहाय देगी कर,
बुद्धि की न बात आग घर में लगाना बन्धु !

(८)

"इन्द्रजित-पितु हैं, विजित हैं किसी से नहीं,
प्रबल पराक्रम का लोहा मानता है जग।
प्रथित प्रयाण सुन प्राण करते प्रयाण,
डोल उठती है धरा काँप उठते हैं नग।
ऋद्धियाँ समस्त नित्य जोहा करती हैं मुख,
सम्पति त्रिलोक की उमग चूमती है पग।
प्राप्य क्या रहा है शेष जिसके लिए विशेष,
दाँव पर स्वयमेव आप ही गए हैं लग।

[९]

"वैर उनसे क्यों जो प्रकृति से विकारहीन,
राग से न राग जिन्हें द्वेष से न सरोकार।
नीति की है बात तात ! अन्यथा न मानें इसे,
मित्रामित्र से हो नित्य सानुरूप व्यवहार।
एक अबला को क्या सताना है उचित बन्धु!
पक्षपात त्यागकर सम्यक करें विचार !
भय है, रसातल में लेके डूब जाए नहीं
देश-कुल के समेत आपको ही अत्याचार।

"शिव की कृपा से फल आपको मिले हैं सभी,
जीवन में और किस हेतु हैं उठाते क्लेश।
लोहा शूरवीरता का शेष भी गए हैं मान,
हतप्रभ से कृतान्त, दिगभ्रान्त दिवसेश।
आठो लोकपाल बन्दीगृह में पड़े हैं बन्द,
गा रहे गुणानुवाद भाट से खड़े सुरेश।
बिगड़ी बनी है, बनी बनी तो बनी ही रहे,
बिगड़े न बात, बातजात देख कौण पेश!

(११)

"मण्डली सभासद की चाटुकारिता में लीन,
सर्वथा सदा सद-विचार ही गया है मर।
नीति-धर्म-कर्म से विहीन मन्त्रियों का कुल,
शोषण-निरत, घर अपना रहा है भर।
रंचमात्र चिन्ता है न देश-जाति-गौरव की,
लोक-परलोक का भी इनको नहीं है डर।
पक्षधर आपके प्रवंचना रहे हैं कर,
हित किसी भाँति भी न आपका सकेंगे कर!

(१२)

"कान भरने की सिद्ध हस्तता हुई है प्राप्त,
धर्माधर्म-कर्म के न मर्म से है सरोकार।
मन्त्र 'हाँ हुजूरी' का सदैव करते हैं जाप,
विवश बनाते दूसरों को ये सभी प्रकार।
स्वार्थ-पंक में धँसे नृशंसता का जामा ओढ़,
परिकर बद्ध हैं निरत पर-अपकार।
दत्त चित्त होके आप खुद ही करें विचार,
चल क्या सकी है कभी चमचों से सरकार?

(१३)

"वाणी के मधुर पर वार करते हैं गुप्त,
चाहते वही हैं गला दूसरों का जाए कट।
'हें-हें' कर अपना हैं स्वार्थ कर लेते सिद्ध,
गिद्ध से जमे हैं कर जाने को त्वरित चट।
रंग गिरगिट-सा बदलते रहे हैं नित्य,
माया इनकी है अपघातिनी महाविकट।
भूत हैं प्रभूत, जड़ काटते सुशासन की,
आपके सिंहासन को दें न ये कहीं उलट।

(१४)

"आपकी प्रशस्ति के ही पुल बाँधते हैं सदा,
भय है समाया यही आप हों न अप्रसन्न।
सन्न रह जाते हैं भृकुटि वक्र देखते ही,
भासता है, जीवन का शेष हो चुका है अन्न।
लूट धन-वैभव को हो गए धनाधिप-से,
आकृति में दीन-से मुखाकृति में हैं विपन्न।
रुख देख बोलते हैं, पीछे-पीछे डोलते हैं,
करते वहीं हैं आप जिससे कि हो प्रसन्न।"

(१५)

"राष्ट्र का भला क्या भला कर सकते ये कभी,
सिमटे स्वमेव में ही, दूर इनसे परेश।
कायर, कुचाली, कदाचार के नियामक हैं,
बकुल-समान फिरते हैं लिये साधु-वेश।
शम-दम-नियम से दूर रहते हैं सदा,
ढोंगी तपसी विशेष बट-से बढ़ाए केश।
अपने प्रयोजन में रंजन प्रजा का त्याग,
खुलकर खेलने को बेचने चले स्वदेश।

(१६)

"अंश रंचमात्र स्वाभिमान का बचा है नहीं,
स्वार्थ के ही मन्त्र का अखण्ड करते हैं जाप।
लक्ष में विशेष 'घुस पैठ की कला' में दक्ष,
काम से ही काम, शेष कुछ भी न पुण्य-पाप।
ताड़ का बनाते तिल, तिल का बनाते ताड़,
मोह-दया-माया की न किंचित पड़ी है छाप।
इनका डसा न कभी पानी माँगता है उठ,
होकर सतर्क सावधान रहें बन्धु! आप।"

(१७)

"व्याप्त है त्रिलोक में जो गौरव-गुरुत्व उसे,
करके कलंकित न धूल में मिलाएँ आप।
दल के निरीह असहाय प्राणियों के दल,
साख न मिटाएँ, पाप-शाप न कमाएँ आप।
अयश-पिटारी बन, काम की कटारी साध,
अति अपकारी हो न जननि लजाएँ आप।
वयस व्यतीत भोग-भोग में हुई है व्यर्थ,
अब जो बची है राम-भक्ति में लगाएँ आप।"

(१८)

"पौरुष प्रबल था भुजाओं में भरा जो बन्धु!
तोड़ क्यों न पाए शम्भु-चाप आप विकराल?
रामानुज-खचित न बंध-रेख पाए लांघ,
वीरता-विपुल दशभाल! दी कहाँ पै डाल?
साहस अपार था जो भय था किसी से नहीं,
चौर-वृत्ति-साधना का फिर क्यों बिछाया जाल?
सूनी कुटिया को कर भूमि जा जो लाए हर,
छद्म-साधु-वेश में तो कौन-सा किया कमाल?"

"होके नीतिवान चौर-कर्म में रँगाए हाथ,
साथ अनाचार का है ठीक किसी भाँति भी न।
सारे वर-वैभवों को जीवन दे जीवन में,
भोग की अगाध सरिता के बने पीन-मीन।
विकला बनी ही रही आपकी हवस हाय!
मन है मलीन, मन्द कर्म में हुए हैं लीन।
असत असित से ग्रसित चित्तवृत्तियों को,
कीजिए विरत, पड़े जिससे न होना दीन।

(२०)

"तर्क की नहीं है बात खोलते हैं नर्क-द्वार,
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह के विकार-वृन्द।
डस-डस लेते प्राण हँस-हँस खेल-खेल,
उरग बने हैं उर-विवर के छल-छन्द।
वृष्टि भव-जाल से ग्रसे हैं जीव, जीव किन्तु,
यष्टि-अविचार साध होरिल-से मतिमन्द।
परिणाम भोगते हैं, फिर भी न चेतते हैं,
परिताप झेलते हैं भजत न रामचन्द।

(२१)

"तर्क न वितर्क तर्कातीत को हैं पाते माप,
पुरुष पुराण वही ब्रह्म हैं धरे स्वरूप।
व्याकुल धरा को धर्म-ह्रास से मलीन देख,
करने सनाथ रघुनाथ प्रकटे अनूप।
विधि-हरि-हर से सदैव अभिवंदनीय,
जिनके सुयश की खिली है चारों ओर धूप।
वैर रख उनसे स्व-वंश का न नाश करो,
असुर-समाज के हे रक्षक! हे रक्ष-भूप!!

(२२)

"गो-पद-सदृश भव-सिन्धु बन जाता और,
जिनकी कृपा से तरणी है लग जाती पार।
करते अनाथ को सनाथ अनायास जो कि
अशरण-शरण हरण-भय-भूमि-भार।
पाप-दाप-नाशक हैं जिनके चरण चारु,
जिन पै त्रिदेव बार-बार जाते बलिहार।
आदि-अन्त-रहित हैं, सृष्टि तरु के हैं मूल,
सत्य-शेषशायी राम ने है लिया अवतार।"

(२३)

"इनसे विरोध किसी भाँति भी नहीं है ठीक,
वीर-व्रतधारी जन-जन-हितकारी राम।
रहते सदैव अनुकूल शरणागत के,
भक्त-मन-हारी, उर-अजिर-बिहारी राम।
अति उपकारी, अविकारी, अघ-ओघ-हारी,
चाप-शर-धारी, भारी असुर-बिहारी राम।
घट-घट-वासी, अविनाशी, वनवासी आज,
अकथ उदासी मुनि-चारी-वेश-धारी राम।"

(२४)

"मार न सकेंगे कभी जो कि है अनादि-नित्य,
शुद्ध-बुद्ध है विशुद्ध चेतना का है प्रसार।
सार-तत्त्व सत्त्व का है रूप अमरत्त्व का है,
समता-समत्त्व का है, दिव्यता का उपहार।
हार रवि-रश्मि का है सोम में पीयूष-धार,
ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय है अजेयता का है विचार।
चार है न, रंग-रूप-हीन है, विकार-शून्य,
शून्य का स्वरूप उसे कौन सकता है मार ?"

(२५)

"[illegible]

भेद-दृष्टि हो न राग द्वेष का कढ़े जहर।

नाम-रूप भिन्न-भिन्न किन्तु हैं सभी अभिन्न,

जैसे निधि-नीर-तीर नीर नीर की लहर।

सत्त्व प्राण शक्ति बन, पंचतत्त्व में सघन,

मूर्तिमान है सृजन, हंस हो उठे मुखर।

चीर-सा शरीर यह अनित्य सत्य-सिद्ध है,

मृत्यु है न किन्तु जीव, जीव है सदा अमर।"

(२६)

"भरे-भरे ऊपर से अन्दर से खोखले हैं,

आप ही विचार बन्धु ! कितने हैं रीते आज।

अकथ प्रयास से अतुल सम्पदा की प्राप्त,

फिर भी न स्वप्न हुए पूरे मनचीते आज।

छोड़ के कुसंग, सतसंग में रमा के वृत्ति,

राम-नाम-अमृत का प्याला क्यों न पीते आज ?

भेद भेद-भावना अभेद-भावना में डूब,

आप क्यों न जीवन को जीवन-सा जीते आज ?"

(२७)

"जीवन कहाने योग्य जीवन यथार्थ वही,

जिसमें न मोह का हो मोह के लिए प्रवेश।

लोभ के लिए न लोभ, रंच भी नहीं हो क्षोभ,

द्वन्द्व का न द्वन्द्व हो, न लेश काम का हो क्लेश।

मद का नहीं हो मद, दम्भ का रहे न दम्भ,

लिप्ति में नहीं हो लिप्ति, वृत्ति तृप्ति हो विशेष।

क्रोध का न अंश हो, विरोध का न प्रतिशोध,

हो न भूत-द्रोह, हो अभूतपूर्व परिवेश।

"बालि-सुत अंगद से पायक महान साथ,
रण के विधायक हैं ऋक्षराज जामवन्त ;
नल-नील-द्विविद-गयन्द-वृन्द से अमन्द,
पौरुष-प्रभूत हैं अतीव ओज मूर्तिमन्त ।
अनय-विनाशक शिलीमुख प्रचण्ड जहाँ,
त्रासक, बिनाशक, हैं दैत्य-वंश के दुरन्त ।
शेष नरवेष में अनुज जिनके हैं बन्धु !
स्वप्न में भी उनका न सम्भव कदापि अन्त ।

(२९)

"गर्व आपको है मेघनाद-सा मिला है पुत्र,
इन्द्र को भी जिसने स्ववश में लिया है कर ।
बन्धु बलशाली कुम्भकर्ण के समान प्राप्त,
थर-थर काँपता त्रिलोक जिससे कि डर ।
कालनेमि-कुमुख-अकंपन बलाधिप से,
सेना चतुरंगिणी रही है भुवनों में भर ।
फिर भी न ठीक जो प्रचारा भूमिजा को हर,
धावा किया राम पै पजावा-सा किया है घर ।

(३०)

"धड़क फणीन्द्र-उर कड़क उठेंगे फण,
रण में डटेंगे जब चाप खींच रघुनाथ ।
भड़क उठेंगे रवि-बाजि पथ-भ्रष्ट होंगे,
विधि के कमण्डल का होगा अवरुद्ध-पाथ ।
खसक खमण्डल से धरती उठेगी काँप,
कसमस होगा राम-पृष्ठ से बँधा जो भाथ ।
ठसक भरे-से जब छोड़ेंगे सरोष वाण,
प्राण म्रियमाण त्राण पाएँगे न दशमाथ !

"सत्य-ओज आवृत असत्य से हुआ है, तब,
प्रलय हुई है जब नीति की हुई है क्षय।
समय-विधुन्तुद ने राज-चन्द्र-कौमुदी को,
ग्रस ही लिया है, प्राप्त भाग्य-व्योम में है भय।
नियति-भचक्र सर्प-गति-सी हुई है वक्र,
अस्त हुए पुण्य, पाप-सिन्धु में हुए हैं लय।
उच्छ्वसित् दौड़ने लगेंगे शर-जाल-व्याल,
खींचता है काल-रेख आपकी न होगी जय।"

(३२)

रोक अपने को जब पाया न दशानन तो,
बोला यों विभीषण से—"डींगे क्यों रहा है मार ?
ऐसा कौन जग में टिका जो मेरे सामने हो,
झेल सकता है कौन मेरा प्राण-घाती-वार ?
तौल ली भुजाओं की तुला में काल की भी शक्ति,
भाल चन्द्रभाल पै चढ़ाए कितनी ही बार !
वृत्तिवास-गिरि[1] को उठाया खेल-खेल ही में,
कौन है त्रिलोक में न मानी जिसने हो हार ?"

(३३)

"सिहर उठे हैं दिशिपाल, शेष, कच्छप भी,
कहर मची है जब लहर उठा है हाथ।
स्वत्व के समर में अमर बच पाए नहीं,
सम्मुख जो आए उड़े मृत्यु की हवा के साथ।
गहन गहन[2] कन्दरा में छिपे देववृन्द,
'लाभ'[3] पर लाए गए 'मीम'[4] से झुकाए माथ।
मेरे शौर्य के समक्ष लक्ष-लक्ष ऋक्ष-कीश,
बच न सकेंगे कभी संगर में रघुनाथ।

(३४)

"मेरे सामने है क्या बिसात लघु वानरों की,
नर-पामरों की रखती न कोई अर्थ ;
विश्व में न कोई लाल माई का हुआ है कहीं,
लोहा मुझसे ले जो गवाँ दे निज प्राण व्यर्थ।
भय क्या दिखाता उसे भय के लिए जो भय,
काल काल के लिए, अनर्थ के लिए अनर्थ।
बार-बार देता मैं चुनौती ठोंक ताल उग्र,
होता समुदग्र क्यों न राम यदि है समर्थ ?

(३५)

"किसने किया है अतिक्रमण न सोचा कुछ,
कह, अविचारी कौन—मैं हूँ या कि रघुवीर ?
किसने कुरूप किया नाक-कान दोनों काट,
स्वसा-अपकारी कौन—मैं हूँ या कि रघुवीर ?
किसने जगाया सुप्तसिंह दे चुनौती खर-
दूषण-सँहारी कौन—मैं हूँ या कि रघुवीर ?
तू ही बता दोष किसका है, किसका है नहीं,
आक्रमणकारी कौन—मैं हूं या कि रघुवीर ?

(३६)

"आक्रमणकारी ने निमन्त्रण दिया है खुला,
सीमा में प्रवेश किया युद्ध का सजा के साज।
हो हताश राम-राम-बन्धु भाग जाएँ शीघ्र,
वरण किया है सीता-हरण इसी के काज।
नीति ये तुम्हारी लगती है देश-द्रोह जैसी,
शत्रु-गुन गाते आती तुझको नहीं है लाज।
क्लीव हूं नहीं मैं प्रतिशोध क्या असम्भव है,
विदित प्रतापी विश्व-विजयी रहा हूं आज।

(३७)

"उत्तर चुनौती का मिलेगा समरांगण में,
होगा सिद्ध शूर कौन, कौन कितना है वीर ?
कितना है ओज-बल, तपसी कु-बालकों में,
कितने विषाक्त हैं सशक्त उनके हैं तीर ?
देखना है वाहिनी विशाल ऋक्ष-वानरों की,
कितना है पानी और पानीदार रघुवीर ?
फड़क भुजायें रहीं, हो रहा न संयत है;
बीस लोचनों का रोष-अनल हुआ अधीर।

(३८)

"अब न सहूँगा न सहूँगा अति वानरों की,
नियति यही है भूमि-लुण्ठित हों शत्रु-शीश।
अब न रहूँगा न रहूँगा मौन संगर में,
छोड़ूँगा न जीवित भले ही हों सहाय ईश।
अब न बहूँगा न बहूँगा क्षोभ-सागर में,
लूंगा प्रतिशोध शोध-शोध ऋक्ष-भालु-कीश।
अब न दहूँगा न दहूँगा क्रोध-पावक में,
दहन करूँगा राम तापस हो या अहीश।

(३९)

"षड़यन्त्र-साधक को विन्ध्य-अटवी में जान,
वांछनीय था मुझे कि करता में प्रतिरोध।
त्रिशिरा, विराध, खरदूषण का वध सुन,
मौन ही रहा मैं, हुआ मुखर नहीं था क्रोध।
रक्षा-शिविरों को देख विजित न बोला कुछ,
ध्यान भी दिया न किया रंचमात्र भी विरोध।
सालता यही है क्षोभ मेरे हृदयस्थल को,
प्रतिशोध का जगा न मुझमें तभी क्यों बोध ?

(४०)

व्यक्तिगत राग-द्वेष का नहीं, ज्वलन्त प्रश्न—
चिह्न यह राष्ट्र की अखण्डता का है महान।
अस्मिता हमारी पै किया है वार बार-बार,
झकझोर डाला है समस्त स्वत्व, स्वाभिमान।
भानु-सितभानु[1]-तुल्य मेरी कीर्ति-कौमुदी पै,
राहु-केतु-संघ का चला रहा है अभियान।
उद्यत है शत्रु रक्ष-संस्कृति-विनाश-हेतु,
जातिगत-चेतना ही एकमेव है निदान।

(४१)

"आर्येतर-गौरव को नष्ट करने के लिए,
गुप्त-मन्त्रणा का यह जीता-जागता है साज।
षडयन्त्र-कौशल कुटिल ऋषिवृन्द का ये,
विजित हमीं हों रण-संगर में राम-व्याज।
कूटिनीति किन्तु यह सफल न होगी कभी,
शत्रु-सभ्यता ही बिना डूबे न रहेगी आज।
सीता आर्य-संस्कृति की हर ही चुके हैं अब,
लोहा ले रहे हैं मात्र, राष्ट्र-प्रतिरक्षा-काज।"

(४२)

"कर दे न पाने पर ऋषि-मुनियों ने घट,
शोणित से अपने लबालब दिया था भर।
'कारण हो रावण के नाश का प्रसूत' बोले—
'वंश में बचे न कोई शेष नामलेवा नर।'
आत्मकुल-रक्षणार्थं रक्त-शाप-ग्रस्त-कुम्भ,
मिथिलापुरी में आप भूमिगत आया कर।
हल लगने से वही फूटा वहीं सीता-बीच,
जन्मती है सीता आर्य-संस्कृति-स्वरूपधर।"

(४३)

"जानता हूं षडयन्त्र भीषण गया है रचा,

कौशिक1-वशिष्ठ बने कोशल में सूत्रधार।
भरद्वाज-आश्रम में गुप्त-मन्त्रणाएँ हुईं,
आदिकवि, अत्रि, शरभंग ने किया प्रचार।
याज्ञवल्क्य ने है किया विष का वमन घोर,
रण की सुतीक्ष्ण ने की सिद्ध भूमि का तैयार।
जनमत मेरे विपरीत कर कुंभज ने,
तुझ-से जनों के मनोबल को दिया है मार।

(४४)

"लंक-दशकण्ठ पर चक्र-नवकोणी चला,
बीस भुज-आयुध अकीलित जगे अपार।
सर की न सरकी जटाएँ जटियों को मार,
सर की अनी-अनीक होगी अब उपचार।
घातक दुरभिसन्धि जायगी रसातल में,
नीच यतियों की खाल खींच लूंगा प्राण-सार।
बार-बार की न बात, मात्र एक वार में ही,
बेड़ा शव-यूथ होगा, होगा तभी बेड़ा पार।

(४५)

"देश की परिधि में प्रवेश शत्रुओं ने कर,
जाग्रत किया है सुप्त क्रोध का विषैला नाग।
व्यर्थ हो न रक्तपात भीषण अनर्थकारी,
संयत बना हूँ नहीं छेड़ा युद्ध का है राग।
सोचता हूँ अनुलंघनीय जान सागर को,
रुक न सकेंगे रिपु जाएँगे यहाँ से भाग।
किन्तु, यदि आ ही गए वारिधि को लांघ लंक,
प्रण है, समस्त सृष्टि में तो लगा दूंगा आग।

(४६)

"सीता का हरण गतिरोध आर्य-संस्कृति का,
और प्रतिशोध का विधान है बना अमन्द।
मोह है मुझे न रंचमात्र भी विदेहजा का,
काम का गुलाम हूँ न किंचित है छल-छन्द।
ऐसा ही प्रवन्ध करना है चारु चातुरी से,
युग बन्धुओं को युद्ध-मध्य करना है बन्द।
भासता यही है अब गोपन-विभाग रख,
सन्धि-अभिसन्धि में रमा है मूढ़ मतिमन्द !"

(४७)

"तर्क में नहीं है सार" उत्तर विभीषण का,
मिथ्या आत्म-तुष्टि की ही व्यंजना रहे हैं कर।
व्यर्थ वाक्य-जाल से ही भरते चरित्र-छिद्र,
व्यष्टि-समाविष्ट जो समष्टि का बताते स्वर।
क्षीण हुई बुद्धि-शक्ति सिद्ध करने में यही,
राम हैं न ब्रह्म, मात्र जन्म से निरीह नर।
मूल में निहित एकमेव है विषाक्त स्वार्थ,
गोपन सयत्न किया राष्ट्र का दिखा के डर।

(४८)

"आर्यानार्य-भेद आचरण के उभय-पक्ष;
कौन उत्तमोत्तम है कौन है अगृहणीय—
कूटनीति-प्रेरित है आपका विभेद यह,
जल्पना निकृष्ट मात्र रंच भी न वरणीय।
धैर्य, दया, क्षमा, शुचि, सत्य, आत्मज्ञान-युक्त,
संयमी विशुद्ध विश्व-बन्धु आर्य रमणीय।
जाति एक ही है किन्तु त्रासक त्रिलोक के जो,
दास इन्द्रियों के हैं अनार्य वे ही गर्हणीय।

(४९)

देश-जाति-धर्म का विचार ठीक ही है किन्तु,
उससे परे है बन्धु ! विश्व का विशद क्षेम।
बाँध सकीं मानव को कृत्रिम दिशाएँ नहीं,
प्राणिमात्र से ही वाँछनीय है निभाना प्रेम।
लोक-परलोक से बड़ा है अपवर्ग—सुख,
उसको संवारिए, बिसारिए अनित्य-नेम।
होके शरणागत स्वगति को बनावें दिव्य,
राम-नाम सार है, असार सृष्टि हीर-हेम।

(५०)

राम की प्रशंसा सुन रावण ने होके उग्र,
अर्ध-चन्द्रहास बद्ध कोश से लिया है खींच।
दर्पयुक्त वाणी में विभीषण को लक्ष्य कर,
बोला—"लगता है तेरे शीश नाचती है मीच।
आती है न शर्म शत्रुओं का पक्ष लेते हुए,
कुल-कीर्ति पैं कलंक-पंक क्यों रहा उलीच ?
जाके मिल उससे लगाव जिससे है तुझे,
मुख न दिखाना अब जा-जा दूर हो जा नीच।"

(५१)

अम्बक-बीस-सरोष-कृशानु
महानद-ज्वार लिये मचला।
रावण ने पदाघात किया,
जगी दम्भाविवेका-कला-विकला।
क्षुब्ध हो बोला विभीषण यों
"अभिमान किसी का नहीं है फला।
दोष मुझे अब कोई न दे,
सब छोड़ मैं राम की ओर चला।"

चार

(१)

ताड़ित विभीषण के सद्य त्यागने की बात,
कौंधी बिजली-सी फैली दावानल के समान।
हो रहे विदीर्ण उर, छाया मूक-रोदन है,
आपदा-अनिष्ट से सशंकित सभी हैं म्लान।
ताले रसना पै, प्राण सूखते, न पाते त्राण,
रावण-प्रकोप को प्रचण्डता से कम्पमान।
संकट-घड़ी में लोक-नेता के निरादर से,
जन अवसन्न मानों मृत्यु ने चुना निदान।

(२)

"देश के समस्त प्राणियों को आत्मवत मान,
दीन-दुखियों का हित-साधन करेगा कौन ?
रुज से अशक्त वृद्धजन-हितकारी बन,
पीड़ा के त्रिपात-कष्ट दुसह हरेगा कौन ?
तन-मन-धन-प्राण पण से समर्पित हो,
सेवा-साधना की अब नियति वरेगा कौन ?
पंगु, असहाय, निरुपाय जो विशालकाय,
उन पै सदय पाणि अभय धरेगा कौन ?

(३)

"केवल न चेतन-जगत ही में सीमाबद्ध,
स्थावर भी उसकी सहानुभूति के हैं पात्र।
चार-पद-वाले-पक्षधारी भी दुलारता जो,
सर्वभूत-हित-कामना में है निरत मात्र।
कण-कण में है दिव्य भावना-प्रतीति ऐसी,
मानों भासमान हो उठा हिरण्यगर्भ-गात्र।
जन-मन-राज का वही है महाराज एक,
लंकपति-रावण-विमातृ-बन्धु अन्य नात्र।"

(४)

सोचता विभीषण निराकृत सभा से उठ,

"मिल परमा से स्वर्ण नगरी करूँगा त्याग।

धर्म-कर्म-संगिनी पतिव्रता प्रकृष्ट वह,

शम-दम संयम की झेलती रही है आग।

मेरे सन्निकट सुखमान रही तापमो-सी,

जान ही न पाया कब सोई उठती है जाग।

महिमामयी को छोड़ करना मुझे प्रयाण,

कैसे त्राण दूंगा उसे जिसकी भरी है माँग?

(५)

"अन्तर में अन्तर हुआ न कभी दम्पति के,

सम्पति-विपत्ति में गहे ही रही मेरा हाथ।

नाता जन्म-जन्म का बना है आत्म-ऐक्य-दृढ़,

सम्बल पवित्र जीव-जीवन का पुण्य पाथ।

मेरी साधना का मार्ग करती प्रशस्त सदा,

नत चरणों में पड़ी होकर विनत माथ।

हेतु[1] बन हेतु है अहेतु की हुआ समक्ष,

छोड़ना पड़ेगा मुझे स्वल्प दिवसों का साथ।

(६)

"मेरी कार्य-साधिका निरन्तर रही है वह,

मुझमें ही उसने निजत्व को दिया है वार।

चिन्तन-मनन-आत्मनिग्रह का विग्रह ले,

काम-कामनाओं की विभीषिका रही है मार।

अन्तर नहीं है कथनी में करनी में कहीं,

दृष्टि समदृष्टि हो समष्टि की बनी शृंगार।"

मानसर-हंस-सा उतर हंस-अंशुओं-सा,

विभ्रम-तमस-त्याग आया सरमा के द्वार।

(७)

आया जान पति को प्रफुल्लित-पुलक-गात,
घाई हरिनी[1]-सी सजा लाई आरती का थाल।
अर्घ्य-मधुपर्क-दिव्य-आसन प्रदान कर,
पाई साधना की सिद्धि, भव्य-भावना विशाल।
करतल गत चारो फल मान जीवन के,
चख चरणोदक चढ़ाया चारु-चक्षु-भाल।
कर्म-ज्ञान-भक्ति की त्रिवेणी-अवगाहने से,
सेवा की प्रकृष्ट चेतना हो हो उठी निहाल।

(८)

"खोजते-से लोचन, अराल-रेख-जाल भाल,
व्याकुल मनस्थिति को व्यंजित रहे हैं कर।
आनन की आकृति से हो रहा प्रकाशित है,
मन्थन विचारों का रहा है चल तीव्रतर।
दारुण विचित्र है कठोर-करुणा का भाव,
मुट्ठियाँ कसी हुई निरीह बन्द हैं अधर।
कृपया बताएँ अनहोनी क्या घटी है नाथ !
पीड़ा किस भाँति सकती हूं आपकी मैं हर ?"

(९)

"लंकपति-रावण से ताड़ित-प्रताड़ित हो,
हाटकपुरी से दिया मुझको गया निकाल।
नीति के विरुद्ध अपघाती आचरण जान,
मौन रह पाया नहीं, बोला मन्त्रि-धर्म-पाल।
"सौंप के विदेहजा को मित्रता बढ़ाएँ आप,
कृत्य दूत के विचार होने दें न अतिकाल।"
भूप को न भायी सत्य-सम्मति स्वदेश-हित,
लांछन लगाया भाल राष्ट्र-द्रोह का कराल।

(१०)

"लावा दृष्टि का बिखेर लाल लोचनों से मानो,
उग्र हुआ ज्वालामुखी रोष का महाविकट।
पैर को पटक, दाँतपीस, बीस बाहुओं से
सत्यमेव मृझ पै सचान-सा पड़ा झपट।
कम्पित दिशाएँ कर बोला चन्द्रहास खींच,
पामर, पिशुन, नीच सामने से जा तू हट।
शाखा मृग-तापसों से पूर्व एक ग्रास ही में
अन्यथा समग्र उदरस्थ कर लूँगा चट।"

(११)

"कर्मकृत-बोझिल हो मायावर्त में प्रवृत्त,
डूबी भव-सिन्धु की तरणि जो रहे उबार।
राघव-चरण-चारु-तट की शरण गह,
भार वाड़वाग्नि झोंक होना है विगत-भार।
विस्मय महान शब्द का विलोम जप,
पाप रतनाकर[1] के हव्य हो हुए हैं क्षार।
मेरे अवलम्ब तो कृपावलम्ब राम ही हैं,
हारा सब भाँति हूं. सहारा उनका ही द्वार।

(१२)

"संज्ञा राष्ट्रघाती की मुझे हो प्राप्त सम्भव है,
देश के पराभव का दोष दिया जाए मढ़।
लिप्सा ले जिजीविषा की साथ परिपन्थियों के,
मैंने ही ढहाया है, कहेंगे लोग लंक-गढ़।
लाँछन लगेगा भ्रातद्रोह का अवश्यमेव,
और 'गृहभेदी' कह कोसेंगे सभी हो दृढ़।
ग्राह्य अपकीर्ति है, असह्य अबला के कष्ट-
हेतु जन्मभूमि त्याग राम से मिलूँगा बढ़।"

वृत्त सुनते ही लगा काँपता हुआ-सा नभ,
घूमती हुई-सी धरा, डोलता हुआ-सा धाम।
तारे नाचने-से नैनतारों के समक्ष लगे,
शीश सरमा ने लिया हत प्रभ होके थाम।
"हो चुकी है होनी, हो न कोई अनहोनी और,
कण्ठगत प्राण हैं प्रकाम जीवनाशा क्षाम।
वामदेव-वाम[1], वाम[2] हों न वाम देव सब,
वामाचार्य[3] वाम, अब हों न वामदेव[4] वाम।"

(१४)

होकर विकल अति आतुर किया है प्रश्न,
किसके सहारे मुझे छोड़े जा रहे हैं नाथ?
कैसे पाप उदित पड़ा जो घोर संकट है,
विकट परिस्थिति में कौन दे सकेगा साथ?"
श्वास है शरीसृप-सी रुद्ध हो गया है कण्ठ,
बन्ध अम्बकों को तोड़ बहता प्रताप-पाथ।
कातर विभीषण स्वरों में माधुरी उँड़ेल,
बोला धैर्य देता कर लेता सरमा का हाथ।

(१५)

"अनाचार-यामिनी से ग्रस्त हुआ ज्योति-गात,
होता मुक्त लंक-जल जात का विकास पास।
चन्दन-चँवर-चारु चन्द्र-चन्द्रिका-स्वरूप,
देश का भविष्य सुधा-स्नात हो यही प्रयास।
तम पै तुषारापात ज्ञान-रश्मि का प्रपात,
देगा कर अवदात सद्य-अद्य का प्रवास।
त्याग की विषम आग तप की प्रतीक मान,
झेल लो वरानने! समीप धर्म का उजास।

(१६)

"स्वल्प काल का ही यह कष्ट है विशालकाय,
नियति यही है हमें भोगना है भोगमान।
राज-व्यवहार-धर्म-नीतियों से बाधित हूँ,
सत्य-रक्षणार्थं आ सहायता करो प्रदान॥
त्यागना न धैर्य, पड़ी आपदा कसौटी आन,
कुल की न बात मात्र देश सर्वश्रेष्ठ जान।
साध प्राण-दीपक को तम पै करें प्रहार,
संग ज्योतिमान प्राप्य लक्ष्य हो यही महान।"

(१७)

"विषम परिस्थिति में श्रेयस है सत्य-पक्ष,
ठीक कहते हैं आप देश-हित है प्रधान।
अत्याचार-सम्मुख झुकाना माथ क्लीवता है,
ग्राह्य प्रतिरोध शेष खोना है न स्वाभिमान।
ग्रसित तमस तम क्षितिज स्वराष्ट्र का है,
उचित है त्याग-मार्ग गर्भ में छिपा विहान।
आपका प्रयाण पराभूत करता है चित्त,
षडयन्त्र-साधिका कहेंगे लोग, क्या निदान?

(१८)

"परम पुनीत पुण्य प्रेम के प्रणेता आप,
प्रणय प्रभूत माँग भर के नवाती माथ।
वाणी-मन-कर्म से त्रिकाल अनुगामिनी हूँ,
जैसा जो कहेंगे आप मुझको निभाना साथ।
प्रेयस मुझे है भवदीय चरणों की रज,
श्रेयस है सत्य-साधु-सम्यक सुझाया पाथ।
वृत्त-परिवृत्त-परिचालन-विधान ज्ञान
गुह्य-गुह्यतम गोपनीय हो बताएँ नाथ।"

"प्रखर हो बुद्धि में, सतर्क दत्त चित्त होके,
दाब रसना को रहना रसाल-चोपी बन।
हर हों सहाय, हर काम हो प्रसन्नता से,
खोजना रहस्य गुप्त वाणी-प्रीति-रोपी बन।
स्तुति में दशानन की अग्रणी सदैव रह,
भेंटना विदेहजा प्रच्छन्न-गात-गोपी बन।
तत्र प्रतिपद प्रथमाक्षर का ध्यान धर[1]
गुन मुन गुन बात करना अलोपी बन।

(२०)

"गुप्त कार्य-साधिका के रूप में यहाँ पै रह,
होने नहीं देना है कदापि विष का वमन।
डूबे मनोबल को उठाना देशवासियों का,
जनमत करना तैयार आपको सघन।
बाजी लगा जान की भी जानकी को सान्त्वना दें,
समवेदना का स्रोत अक्षय है नारी-मन।
रक्षिणी समस्त परिचारिका स्व-वश कर,
लेना कभी दम न, दमन करना दमन।"

(२१)

धीरज धरा पै धर परम विवेक बोली—
"नाथ नीतिवान, गुणवान, ज्ञान के निधान।
प्रथित पुलस्त्य-कुल-भूषण विविध विधि,
पूज के सविधि विधि जाना विधि का विधान।
विमल विचार की प्रभा से अभिमण्डित हैं,
पण्डित हैं, चित्तवृत्ति चंचला विलीयमान।
राष्ट्र का नवीन रूप गढ़ दृढ़ता से रहे,
लंक-गढ़ के यथार्थ ही हैं आप अभिमान।

(२२)

"देश के निवासियों को आपसे मिला है स्नेह,
देह-गेह में सदेह मानों प्रेम का निवास।
पर-हित में ही सदाऽनन्द की विभूति पाते,
भर वाह्य-अन्तर में सत-चित का विलास।
निष्ठा है अनन्म, युग-धर्म-साधना है धन्य,
जीवन-प्रवाह बना देवसरि का विभास।
सोचना भी पाप देश-अहित करेंगे आप,
जिनके प्रयास से हुआ है इतना विकास।

(२३)

"मुक्त-अन्तराल-युक्त जन-जन-नायक हैं,
श्रद्धा की विशुद्ध भावना से सभी अभिभूत।
युग के प्रणेता दीर्घद्रष्टा मानते हैं सब,
नेता सर्वमान्य हैं विशेषता भरी प्रभूत।
रीति-नवनीति का निकाल नवनीत नव्य,
लोक हितकारी-कार्य सर्वथा हैं अनुभूत।
कोई दुष्ट चित्त भी न सोच सकता है कभी,
आपसे त्रिकाल में स्वदेश होगा पराभूत।"

(२४)

"आशा-अनुरूप ही मैं आपके विचार जान,
हो गया प्रफुल्ल चित्त चिन्ता है मिटी दुरन्त।"
"यातुधान सारे त्रासदायक हैं अन्तक-से,
कन्त! दें निदान प्राण-संकट का हो जो अन्त।"
"देखो, शुभचिन्तक यथार्थ ही हमारा यहाँ,
इस नगरी का एक मात्र मूर्तिमन्त सन्त।
प्राज्ञ, दीघदर्शी, लब्धवर्ण मुझ पै कृपालु,
सर्वहितकारी वृद्ध पूजनीय माल्यवन्त।"

(२५)

बात करते ही फल-प्राप्ति-से दिखाई पड़े,
आते हुए सामने से माल्यवन्त मग्न ध्यान।
दम्पति ने सादर प्रफुल्ल हो प्रणाम कर,
अर्घ्य, वचनों से मृदु आसन किया प्रदान।
बोला कुलवृद्ध—"स्वस्ति-स्वस्ति, धर्म-धान्य-वृद्धि,
देश-कुल-दीपक हो यश का तनें वितान।
त्याग चुका रावण है हित को न छोड़ो वत्स !
सत्य-नीति-निष्ठा में सहायक हों भगवान।

(२६)

'जन-धन हानि हुई रावण-दुराग्रह से,
धूल-धूसरित हुई कुल-कानि-अवरेख।
राजनीति-धर्म को रसातल दिया है भेज,
होते बीस नेत्र भी न कुछ भी रहा है देख।
स्वीय राग-द्वेष को ही राष्ट्र-आन बैठा मान,
लंक के सुभाग्य पै लगा रहा कलंक-लेख।
तुममें सपूत ! पूत-भावना भरी अकूत,
वह देश घाती महापातकी न मीन-मेख।

(२७)

"जिसने महत्त्व है दिया न सत्य-सम्मति को,
करता सदैव मनमानी शठ-हठ ठान।
निपट निरंकुश दमन का चलाता चक्र,
निरपेक्ष-बुध-चाटुकार की न पहचान।
पंच विषयों का दास पात्र उपहास का जो,
स्वर्ण नगरी को बना सद्य है रहा मसान।
साख को मिटा रहा है ताख पै विवेक रख,
रावण है देश-भक्त—कौन इसे लेगा मान ?

"लांछित हुए हो सभा-मध्य तुम रावण से,
प्रकट करेंगे बात जाके शत्रु-गुप्तचर।
उत्तम सँयोग, मिलो राम से इसी के व्याज,
नाश हो अनीति का, स्वदेशदास हो न पर।
दृष्टिकोण, बलाबल जान के सुनिश्चित हो,
कर्म की दिशा विशद, सिद्ध हो अभीष्ट वर।
गृह-गृहिणी का भार सौंप मुझे जाओ वत्स !
मंगल करेंगे चन्द्रमौलि, आशुतोष, हर।"

(२९)

चिन्ता मिटी उर हर्ष हुआ सुन
वाणी विवेकमयी हित-सानी।
कर्म का मर्म हुआ प्रतिभासित,
शेष द्विधा की रही न निशानी।
देश का पानी मरेगा नहीं पर
होगी समाप्त अनीति-कहानी।
मोह के बन्धन तोड़ चला, कर
दण्ड-प्रणाम विभीषण ज्ञानी।

पाँच

(१)

गिरि को, गजानन को, गिरिराज-नन्दिनी को,
करके प्रणाम इष्टदेव को किया नमन।
कुलदेवता के चरणों में नत-मस्तक हो,
साश्रु लोचनों से जन्म-भूमि से लगाया तन।
भाल पै चढ़ा के रज, प्राण में बसा के छवि,
लक्ष्य पै लगा के ध्यान, शाण पै चढ़ाया मन।
लंक-कुल-भूषण-विभीषण सवेग चला,
उत्तर दिशा की ओर नभ-पंथ-गामी बन।

(२)

मातृभूमि-अंचल के छूटते दृगञ्चल से,
उमड़ा हृदय में असीम वेदना का ज्वार।
चेतना समस्त वह्नि-धूम सी विलीयमान,
मोह के झकोरों से प्रकम्प ज्ञान का प्रसार।
स्वप्न-सम भाषा दृढ़ निश्चय किया जो पूर्व,
धूमिल हुआ-सा सत्य-शोध-बोध का विचार।
कर्म-काकपाली कूक डर में लगाती लूक,
शूक[1] हुआ पंथ, अवरुद्ध-कण्ठ-दृष्टि-द्वार।

(३)

"आरती उतारने को आते अंशुमान नित्य,
अंक भर लेता चन्द्र अम्बुनिधि होता धन्य।
मानस का मानस त्रिकूट-शिखरों के मध्य,
मूर्तिमान वैभव ससागरा धरा अनन्य।
प्रकृति-नटी ही रमी करके शृंगार दिव्य,
पुरुष पराक्रमी प्रथित भूप-शीर्षमन्य।
ऋद्धि-सिद्धि-निधियाँ प्रवासिनी न होतीं कभी,
मातृभूमि-सी न मोदजन्य पुहुमी है अन्य।

"विकसित वन-उपवन-वाटिका में मत्त,
मधु-पी मधुप मँडराते फिरते सकाम।
खिल-खिल-खिल सुमनों से सुमनों के कर,
सौरभ लुटाते गन्धमादन बनाते धाम।
खग-कुल कुल-कुल कर शिशु-कुल व्याज,
कलश सुधा के ढुलकाते रहते ललाम।
रस-मूर्ति-गढ़ ऋतुराज रमता है नित्य,
स्वर्णनगरी सुरम्य नन्दन बनाती क्षाम।

(५)

"लहर-लहर अभिषेक कर आठो याम,
परम विवेक से परवारा करता चरण।
हहर-हहर कर आर्द्र-कर-पल्लवों से,
हर्ष अतिरेक से चढ़ाता दिव्य आभरण।
छहर-छहर इतराता निज अंक में ले,
जातरूप-लक मूर्तिमान सोम-उद्धरण।
घहर-घहर जटा-वल्ली-घन[1]-नाद-युक्त
करता जलधि नित्य सामगान का वरण।

(६)

"मंजुल मनोज्ञ गोद में पला बढ़ा समोद,
हाय! उसको ही छोड़ने को रहा हूँ बाध्य।
रोम-रन्ध्र में समायी जिस जननी की गन्ध,
दुर्ग जो अभेद्य फोड़ने को हो रहा हूँ बाध्य।
प्राणाधिक मेरे जो स्वजन-परिजन प्रिय,
नाता उनसे ही तोड़ने को हो रहा हूँ बाध्य।
बन्धन-अनीति-बँधी वर्तमान शासन की,
राजनीति-धारा मोड़ने को हो रहा हूँ बाध्य।

"विधि की विडम्बना है विवश हूँ छोड़ने को,
खेद है, परिस्थिति-विशेष आ गई स्वदेश !
पुरुष विराट के ललाट-सा प्रकाशमान,
पावन परम पूज्य रमणीय तेरा वेश।
मेरा ये प्रयाण रंग लाएगा सुरंगतम,
मुझसे अवश्यमेव होंगे दूर सारे क्लेश।
अन्यथा न लेना, भाव अन्यथा न कोई शेष,
सत्य की शपथ मुझे साक्ष्य में रहें महेश।

(८)

"मेरा परावर्तन-विलोम[1] में लगा है चित्त,
इष्ट साध दर्शन करूँगा कब हों कृतार्थ ?
शीश पै चढ़ेगी कब इस धरती की रेणु,
प्राणों की सँजीवनी जो स्वर्ण को बनाती सार्थ ?
स्वच्छ वायुमण्डल अनभ्र आदिकाल का सा,
जाते कब होगा, सिद्ध विग्रह से परमार्थ ?
अर्चना सफल कब होगी राष्ट्र-देवता की,
निष्ठा है अचल किन्तु दैवाधीन पुरुषार्थ ?"

(९)

सीमा देश की है दृष्टि-पथ से हुई अदृश्य,
सागर-उजागर न चाक्षुष गया है रह।
सम्मुख दिखाई पड़ा दण्डक-अरण्य घोर,
शोर बायुमण्डल में वानरों का आता बह।
ऊहापोह से न अब चित्त है मथित रंच,
अपरंच संशय का गढ़ ही गया है ढह।
नियति-नटी का लिया आश्रय विभीषण ने,
नभ से उतर खड़ा भूमि पै हुआ है वह।

प्राप्त वन-अटवी महीरुह विशालकाय,
होके तुंग-शीश कर नभ से रहे हैं बात।
मानों मौन तपसी खड़े हैं साधना में लीन,
सृष्टि की रहस्य-ग्रन्थि खोलते हुए-से ज्ञात।
चूम प्राण वायु कर-पल्लव रहे हैं झूम,
एक में अनेक का सँदेश देते अवदात।
लोक में हरित-क्रान्ति के प्रतीक पूर्तिमान,
मानस-धरा पै शान्ति-शाम्भवी प्रफुल्लगात।

(११)

गुम्फित हो काकली प्रसर वायुमण्डल में,
वेदना-विरह रोम-रन्ध्र में रही है भर।
'तू ही तुही', 'दई-दई', 'पी-पी' की पुकार मानों,
प्राण मथती-सी चली हूलती प्रखरतर।
सकल दिगम्बर में हो रहे दिगम्बर हैं।
बन वनचारी चंचु-पात्र हैं खुले अधर।
जाने किसे खोजने के यत्न में विहंग वृन्द,
नभग बने हैं उड़ते हैं हो विमुक्त-पर।

(१२)

"झंझा के झकोर झर झरने रहे हैं झर,
कलकल नादिनी-कबन्धिनी है पुण्य-पाथ।
सुमन-सुमन हँस झूमते द्रुमों के दल,
सादर बुलाते-से हिलाते पल्लवों के हाथ।
रम्यता-प्रभाव से विभीषण-उरस्थली में,
आई शान्ति-शोभिता विकीर्ण करती-सी गाथ।
कैसा दिव्य भाव है अरण्य-अटवी का यहाँ,
सिंह-मृगशावक हैं पीते जल एक साथ।

गुन-गुन गुनता न सुनता कोलाहल को,
छूटा पथ-बोध, दिशि-भ्रमित रहा है बढ़ ।
विस्मय-विमुग्ध ज्ञान-रुद्ध-सो मनस्थिति में,
स्वेद-धूलि धारे वह श्रमित रहा है बढ़ ।
भासता है कोई यन्त्रचालित विशालकाय,
मानों एक 'रोबेट'1 ही अमित रहा है बढ़ ।
वानर-समूह से विभीषण भयातुर हो,
चंक्रमित, संयमित, नमित रहा है बढ़ ।

(१४)

आ गए नखायुध विशाल दिग्गजों से दौड़,
करते प्रहार हैं, चलाने लगे घूंसे-लात ।
देखी-अनदेखी कर बात भी न पूछी कुछ,
लिपट गए हैं सभी नोचने लगे हैं गात ।
काटने लगे हैं तीक्ष्ण दन्त से दुरन्त कीश,
पद-रज-पूरित है वातचक्र सद्य-जात ।
किलकिल-नाद से कँपा रहे प्लवंग नभ,
उमड़ रहे हैं कुछ डाल-डाल पात-पात ।

(१५)

नेत्र-सा प्रकम्पित, विदीर्ण गात्र, साश्रु नेत्र,
बोला बन्धु-रावण न कष्ट झेल पाया जब ।
"करता विरोध हूँ न स्वीय बल-विक्रम से,
राम की दुहाई है, न त्रास और देना अब ।"
"गुप्तचर शत्रुदेश का प्रतीक होता हमें,
बन्धन शिथिल हो न जाने भाग जाए कब ।
करना उपस्थित कपीश के समक्ष इसे,"
स्वर समवेत से बलीमुख हैं बोले सब ।

(१६)

शाखामृगचारियों के भीषण घेराव-मध्य,
विवश बिभीषण हो गमन रहा है कर।
वार पर वार बार-बार झेलता प्रकाम,
वृत्ति-प्रतिरोधिनी का दमन रहा है कर।
दैवाधीन-गति में सहारा हनुमान मान,
मन-मन ही में गुन नमन रहा है कर।
राम-दर्शनों की लालसा को मूर्त होता जान,
अन्तरस्थ-भाव-बोध वहन रहा है कर।

(१७)

"पातकी परम हूँ मैं अधम अपावन हूँ,
जीवन है लक्ष्यहीन वृत्ति आसुरी में लीन।
मेरे अघ-ओघ हैं अमोघ नित्य वर्धमान,
कोई पुण्य संबल पुराकृत है पास भी न।
भीमकाय भोग नाशवान का न होता अन्त,
माया-सर्पिणी को है सुनाई विषयों की बीन।
किन्तु रुद-चित्त में है विरुद-विभास ऐसा,
राम दीनबन्धु, और कौन मुझसा है दीन ?

(१८)

चिह्न-यव शक्ति को जगाता मन-मेदिनी में,
प्रेम का प्रमाता योग-क्षेम करता प्रदान।
संस्कृति-प्रतीक देश-गौरव समाहित हो,
कंज में बसा है कमलासन कलित ज्ञान।
त्रस्त हो त्रयम्बक से त्याग मीनकेतन को,
अतन हुआ है शरणागत लगाता ध्यान।
शासन का अंकुश, कुलिश वीरता का बल,
राम-पद-रेख में प्रपञ्च-पञ्च का निदान।

(१९)

अमल कमल से सुकोमल चरण चारु,
श्यामल-घटा में नख-दामिनी-छटा ललाम।
बालारुण-आरती के दीप्ति-कण-पुंज-व्याज,
पद-तल में हैं लसीं इन्द्रवधुएँ प्रकाम।
शीश हैं नवाते पंच आनन जटाली जहाँ,
मृदुल मनोहर वहीं हैं पंच-रेख क्षाम।
ऐसे पद-पंकजों में चित्त-चंचरीक डाल,
मन में विभीषण ने सादर किया प्रणाम।

(२०)

भावनातिरेक में न ध्यान बन्धनों का शेष,
दर्शनाभिलाषा राम-रूप की धरे अभंग।
चन्दन की छाप-सी समझ वानरों की थाप,
जा रहा खिचा-सा संग लंक का लिए प्रसंग।
ध्यान के शिखर से उतर दृष्टिक्षेप कर,
देखा एक सामने विशाल शृंग है उतंग।
जिसके सुकण्ठ पै सुकण्ठ है विराजमान,
पवन-प्लवंग-से व्यमान सिद्ध-अन्तरंग।

(२१)

पीछे छोड़ कपि-यूथ-पति है बढ़ा सवेग,
श्रेष्ठ वानरों में हृष्ट-पुष्ट जो बली महान।
शिरसा नमन कर-बद्ध हो विनीत बोला—
"प्रभु की कृपा से सिद्धिमूलक है अभियान।
नभ-पथ-गामी उतरा जो अटवी पै एक,
जकड़ लिया है उसे शत्रु-गुप्तचर जान।
भाषा-वानरी में हुआ इंगित, निदेश मान,
शाखाचारियों ने किया सम्मुख त्वरित आन।

प्रश्न है कपीश का कि "कौन," "हूँ विभीषण मैं,"
"वास," "लंकदेश," "यहाँ आए आप किस काज' ?
"राम-दर्शनों के हेतु मेरा आगमन नाथ !"
"कौन-सा रहस्य-बल-थाह का सजाते साज ?"
"ऐसा कुछ भी है नहीं, सुन लें वहीं पै प्रभु
जहाँ हैं अनुज साथ अन्तरंग का समाज।
मेरी मनचीती बात ज्ञात वातजात को है,
बिगड़ी बनेगी सब केवल उन्हीं के व्याज।"

(२३)

सर्वथा सतर्क दृष्टि का निदेश दे के फिर,
वानराधिराज राम-छावनी गए तुरन्त।
अभिवादनोपरान्त बोले—"गुप्तचर एक,
आया लंक-देश से बिशेष वेश में दुरन्त।
नाम है विभीषण कनिष्ठ बन्धु रावण का,
गोपन-विभाग का प्रधान यही शक्तिमन्त।
दर्शनाभिलाषा का रहस्य खोलता है नहीं,
बात है निगूढ़ जिसे जानते हैं हनुमन्त।"

(२४)

लंक-अभियान की स्वकीय कूटनीति लख,
बोले हनुमान—"है विभीषण न कोई शक।
पंकज-समान जी रहा है पंक-जीवन में,
वृत्तियाँ समस्त भाव-आसुरी से हैं पृथक।
भक्ति-अनुरक्ति है, विरक्ति वर-वैभव में,
साधना-निरत, भवदीय भावना अथक।
सीता-सुधि-प्राप्ति में निमित्त है, निराह बन,
आया दीन होके दीनानाथ की शरण तक।"

"बन्धन-विहीनकर सादर बुलाएँ उसे,
वानराधिराज ! है सतर्कता ही श्रेष्ठतर।
कोई रूप-धारी जीव चाहे जो त्रिलोक में हो,
देव हो, अदेव हो कि दानव बली-प्रवर।
भय की न बात कुछ वातजात अंगदादि,
आपके सहायक हैं जामवन्त से प्रखर।
राम का यही है प्रण, क्षण की न देर कर,
देता शरणागत को अक्षय अभय कर।"

(२६)

राम का निदेश सुन, स्वीकृति कपीश जान,
लाया गया सामने विभीषण को दे के मान।
दण्डवत लम्बमान बोला दशकण्ठ-बन्धु—
"भक्त हनुमान से सुना है कल-कीर्ति-गान।
नीति-अवमानी अभिमानी लंक-नाथ से मैं,
होकर प्रताड़ित समीप हूँ दयानिधान !
पाहिमाम, पाहिमाम तारण-तरण नाथ !
लीजिए शरण शरणागत पँ देके ध्यान।"

(२७)

साश्रु लोचनों से उठे पुलक-पसीजते-से,
आर्त-वचनों की ध्वनि जैसे ही समायी कान।
फड़के प्रलम्ब बाहु आतुर समेटने को,
छूटताकपर्द केश कन्ध पँ पड़े हैं आन।
निर्गता त्रिविक्रम के पैर की पयस्विनी-सी,
मानों मूर्तिमान हो दयार्द्रता ही धावमान।
चार मुख, पाँच मुख ताकते षडानन हैं,
भेंटते विभीषण को राम-भद्र हैं महान।

(२८)

आस-पास का न ध्यान, छूटा देह का भी भान,
एकाकार हो रहे हैं भक्त और भगवान।
समरसता का मिला जीवन को वरदान,
आनँद अखण्ड का उपस्थित हुआ विहान।
मंजु मिलनोत्सव का मोद-युक्त है विधान,
भक्ति का रसोत्सव है, धन्य है कृपा की बान।
वृष्टि-सुमनों से गन्धवाह का तना वितान,
जय-जय-नाद से निनादित है आसमान।

(२९)

लंक-स्वराज्य अयाचित-प्राप्त,
विभीषण को धन-धाम मिला है।
शेष न कामना कोई रही जो,
संदेह हो रामाभिराम मिला है।
सागर के जल से अभिषिक्त हो,
जीव को ब्रह्म प्रकाम मिला है।
भक्त को है भगवान मिला,
भगवान को भक्त ललाम मिला है।

टिप्पणियाँ

पृ० सं० २३

1. यज्ञ ।
2. विद्वान ।

पृष्ठ २४

1. संस्कृत—वाल्मीकि रामायण ।
2. संस्कृत—रघुवंश ।
3. संस्कृत—रावणवध अथवा भट्टिकाव्य ।
4. संस्कृत—उत्तर रामचरितम्, महावीर चरितम् ।
5. संस्कृत—प्रतिमा, अभिषेक नाटक ।
6. संस्कृत—प्रसन्न राघव ।
7. संस्कृत—रामचरितमहाकाव्यम् ।
8. संस्कृत—राघवपाण्डवीयम् ।
9. उड़िया—जगमोहनरामायण ।
10. तमिल—कम्बरामायण ।
11. कश्मीरी—रामावतार चरितम् ।
12. मलयालम—रामचरितम् ।
13. कश्मीरी—अमर रामायण
14. मराठी—भावार्थ रामायण ।
15. कन्नड़—पम्प रामायण ।
16. अपभ्रंश—पउमचरिय ।
17. मलयालम—माधवप्पणिक्कर, शंकरप्पणिक्कर, रामप्पणिक्कर । प्रथम दो ने रामायण का अनुवाद किया है तथा अन्तिम ने 'रामकथप्पाट' लिखा, जो सर्वाधिक प्रसिद्ध है ।
18. तेलगू—मोल्ल रामायण ।
19. बंगाली—कृत्तिवास रामायण ।
20. बंगाली—चन्द्रावती रामकथा ।

21. कश्मीरी—ताराचन्द्र रामायण।

22. पंजाबी—गुरुगोबिन्द सिंह-- गोविन्द रामायण।
23. हिन्दी—रामचरितमानस।
24. हिन्दी—राम की शक्ति पूजा।
25. हिन्दी—पं० उमादत्त सारस्वत 'दत्त'—मन्दोदरी।
26. हिन्दी—साकेत।

पृ०ठ २५

1. वनस्पति-निर्मित सुरा, मदिरा।

पृष्ठ २६

1. तारे ही।
2. आज्ञा।
3. प्रथमभुज—नभग—वायुसेना।

द्वितीयमुज—पदी—पदाति सेना।

तृतीयभुज—अश्व—अश्व सेना।

चतुर्थभुज—गज—गज सेना।

पंचमभुज—रथ—रथ सेना।

षष्टम भुज—देशिक—युद्ध के लिए व्यक्तियों में उत्साह उत्पन्न कर[illegible] वाले अथवा स्काउट्स आदि अथवा उपदेशक।

सप्तमभुज—अमित्र—शत्रु राजा की सेना। शत्रु राजा जब शक्ति के अधीन कर लिया जाता था तो उसकी सेना पर भ[illegible] अधिकार हो जाता था।

अष्टमभुज—मित्र—मित्र राजा की सेना, जो आवश्यकता पड़ने प[illegible] सहायतार्थ बुला ली जाती थी।

नवमभुज—विष्टि—माल-असबाब ढोने वाले श्रमिकों की सेना।

दशमभुज—चर—दूत-सेना ।

एकादशभुज—नाविक—जल-सेना ।

द्वादशभुज—मृतक—नौकरी देकर बनाई हुई सेना, जो युद्ध के समय एकत्र की जाती थी ।

त्रयोदशभुज—मौल—मूलस्थान अर्थात राजधानी की रक्षा करने वाली सेना ।

चतुर्दशभुज—श्रेणी—जनपद में अपना कार्य करने वाले शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण पुरुषों की सेना ।

पंचदशभुज—गुप्तचर—शत्रु देश की सूचनाएँ एकत्र करने वालों की सेना ।

षोडशभुज—अटवी—आटविक (किरातादि) पुरुषों की सेना ।

सप्तदशभुज—चिकित्सकीय—चिकित्सकों की सेना ।

अष्टदशभुज—अस्त्रशस्त्रागार—आयुधागार-अस्त्रशस्त्रों के निर्माण, देख-भाल तथा वितरण की व्यवस्था करने वाली सेना ।

उनविंशतिभुज—हस्तपशाकृष्टि—हाथ से फेंककर, शत्रु को फँसाकर गिरा देने वाली पाश का प्रयोग करने वाली सेना ।

विंशतिभुज—जामदग्न्य—बीच के छेद से बड़े-बड़े गोले गिराने वाली सेना ।

4. दिशा ।

5. मुख ।

पृष्ठ २७

1. आयुर्वेद के आठ अंग हैं—भृत्य कौमार (शिशु-चिकित्सा), शालक्य (नाक, कान तथा गले की चिकित्सा), शल्य (सर्जरी), प्रसूत (प्रसव-चिकित्सा), भूत (झाड़-फूँक से सम्बन्धित), अगद (विष उतारने की चिकित्सा) तथा वाजीकरण (पुरुषत्व प्रदान करने की चिकित्सा) ।

2. रोग का हरण करने वाला अर्थात वैद्य ।

3. तेज, कान्ति ।

4. सेना ।

पृ० सं० २८

1. ॐ रां रामाय नमः ।

पृ० सं० २९

1. वह प्रकाशरूप या ज्योतिर्मय अण्ड, जिससे ब्रह्मा और समस्त सृष्टि प्रकट हुई ।

पृ० सं० ३१

1. अमृत
2. विष

पृ० सं० ३२

1. कठोर, अप्रिय ।

पृ० सं० ३३

1. चैतन्य ।
2. लोक, यश, वित्तैषणा

पृ० सं० ३४

1. अन्न, प्राण, मन, ज्ञान तथा आनन्द कोश ।

पृ० सं० ३५

1. शिथिल ।

पृ० सं० ३७

1. तुलसी ।
2. राक्षस ।
3. शरीर ।

पृ० सं० ३८

1. यहाँ आप कौन हैं ?
2. विस्तृत ।

पृष्ठ सं० ४०

1. कोंयल ।

पृष्ठ सं० ४१

1. सीप ।
2. तारे ।
3. मेरा ।

पृष्ठ स० ४२

1. कुबेर का उद्यान ।
2. इन्द्र का उद्यान ।
3. शिवोद्यान ।
4. दक्षिण दिशा ।
5. मगर के मुख वाले ।
6. दिशा, इच्छा ।
7. श्रवण, वन ।
8. दक्षिणदिशा, राक्षस-संकुल ।
9. बैठी हुई ।
10. शब्द, ध्वनि ।

पृष्ठ सं० ४९

1. रक्तिम नेत्रों से ।

पृष्ठ सं० ५८

1. महादेव का निवास स्थान—कैलाश पर्वत ।
2. वन में गुप्त स्थान ।
3. फौज, जनसमूह, उर्दू वर्णमाला का अट्ठाइसवाँ अक्षर ।
4. उर्दू वर्णमाला का उनतासवाँ अक्षर ।

पृष्ठ सं० ६१

1. चन्द्रमा ।

पृष्ठ सं० ६२

१. विश्वामित्र, उल्लू ।

पृष्ठ सं० ६६

1. कारण, उद्देश्य ।

पृष्ठ सं० ६७

1. लक्ष्मी, मृगी ।

पृष्ठ सं० ६८

1. समुद्र, वाल्मीकि का पूर्व नाम ।

पृ० सं० ६९

1. शिवानी, पार्वती ।
2. प्रतिकूल ।
3. रावण ।
4. शंकर ।

पृ० सं० ७१

1. प्रहस्त ।

पृ० सं० ७५

1. सर्प, कण्टकाकीर्ण ।

पृ० सं० ७६

1. वेद-पाठ की विधियाँ ।

पृ० सं० ७७

1. पुनरागमन ।

पृ० सं० ७९

1. मानव-निर्मित लोह-पुरुष ।

मानस संगम के प्रकाशन

- **आचार्य रामानुज**
  लेखक : श्री सुशील कुमार सिंह
  मूल्य : चार रुपये

- **रामकथा के नये आयाम**
  (निबन्ध संग्रह)
  ले० : श्री शम्भूनाथ आई. ए. एस.
  मूल्य नौ रुपये

- **अस अद्भुत बानी**
  सम्पादक : श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी (हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित)
  मूल्य : दस रुपये

- **मानस मोती**
  (सूक्तियां)
  सम्पादक : श्री मदन मोहन शर्मा (द्वितीय संस्करण)
  मूल्य : तीन रुपये

- **मानस पंचामृत**
  (निबन्ध संग्रह)
  सम्पादक : श्री विष्णु त्रिपाठी
  मूल्य : चार रुपये

- **रामकथा और मुस्लिम साहित्यकार**
  सं० : श्री बद्रीनारायण तिवारी (उ० प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत)
  (परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण डिमाई साइज)
  मूल्य : पचीस रुपये

- **तुलसी के राम**
  (निबन्ध संग्रह)
  सं० : श्री बद्रीनारायण तिवारी (हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित)
  मूल्य आठ रुपये

- **राघव राग (परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण)**
  लेखक : उमाकान्त मालवीय
  मूल्य : दस रुपये

- **लाओस में रामकथा**
  लेखक : श्रीमती कमला रत्नम्
  मूल्य : अठारह रुपये

- **तुलसीदल**
  लेखक : राष्ट्रकवि श्री सोहनलाल द्विवेदी
  मूल्य सात रुपये

- **गोस्वामी तुलसीदास समाज के पथ प्रदर्शक**
  सं० : श्री बद्रीनारायण तिवारी
  मूल्य : पन्द्रह रुपये

- **तुलसी स्तवन**
  सं० : श्री ललित मोहन अवस्थी
  मूल्य : पन्द्रह रुपये

- **तुलसी उपवन**
  सं० : श्री बद्रीनारायण तिवारी
  मूल्य : तीन रुपये

- **मानस रघुवंश**
  ले० : न्यायमूर्ति श्री शिवनाथ मिश्र
  मूल्य : दस रुपये

मानस संगम-स्मारिकायें
सन् १९७० से १९८३ तक

- **विभीषण**
  (रूप घनाक्षरी का प्रथम खण्ड काव्य)
  लेखक : डा० गणेशदत्त सारस्वत
  मूल्य : पांच रुपये

- **मानस और विज्ञान**
  लेखक : डा० रामलषन सचान
  मूल्य : साठ रुपये

—: प्राप्ति स्थान :—

साहित्य निकेतन
श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर-१

बद्री नारायण तिवारी
संयोजक मानस संगम
प्रयाग नारायण शिवाला,
कानपुर-१

करेण्ट बुक डिपो
माल रोड, कानपुर-१

यूनिवर्सल बुक स्टाल
माल रोड, परेड, आई. आई.

साहित्य भवन

ए० वी० ब्रदर्स